

संत रैदास

लेखक
संगमलाल पाण्डेय

दर्शनपीठ

इलाहाबाद

१९६८

संत रैदास

लेखक

संगमलाल पाण्डेय

एम० ए० (इलाहाबाद),

साहित्य-चार्य (वाराणसी)

अध्यापक, दर्शन-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

दर्शनपीठ

१७७, टगोर नगर

इलाहाबाद

१९६६

प्रकाशक
मंत्री
दर्शन पीठ
१७७, टैम्पोर नम्बर
इलाहाबाद

कापी राइट : संगमलाल पाण्डेय

इस पुस्तक के सभी अधिकार लेखक के अधीन हैं ।

मूल्य : छह रुपये

मुद्रक—अनिल प्रिंटिंग प्रेस, तथा कटरा, इलाहाबाद ।

विषय-सूची

रैदास-परिचय

भाग एक

विषय		पृष्ठ
आमुख	...	V
१ रविदास दर्शनसारसर्वस्वम्	...	१
२ शूद्रों की प्रतिष्ठा	...	२
३ रविदास के विभिन्न नाम	...	७
४ रविदास का समय	११
५ रविदास का इतिवृत्त	...	१६
६ रविदास : वैराग्य और भक्ति	...	२६
७ रविदास की भगवत्प्राप्ति	...	३०
८ रविदास का अवमूल्यन और अतिमूल्यन	...	३२
९ रविदास का तत्त्वज्ञान	...	३६
१० कबीरदास और रविदास में अन्तर	४४
११ रविदास के धार्मिक अनुभव	...	५६
१२ सहायक ग्रन्थ	...	६०

रैदास-साहित्य

भाग दो

१३ रविदास-साहित्य	६३-१७५
१४ संकेत-सूची	...	१७६
१५ शुद्धि-पत्र	...	१७६

आमुख

जब १९६५ में संत रविदास के जीवन और दर्शन पर मेरी पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित हुई तब बहुत से मित्रों ने कहा कि इस सामग्री को हिन्दी में भी प्रकाशित होना चाहिए। किन्तु उस पुस्तक का अनुवाद करने के स्थान पर मैंने संत रविदास के जीवन, दर्शन और साहित्य पर एक दूसरी पुस्तक ही हिन्दी में संत रैदास के नाम से प्रकाशित करने की योजना बनाई जो अब कार्यान्वित हो गई है।

“संत रैदास” दो भागों में है। पहले भाग में संत रविदास के जीवन और दर्शन का संक्षिप्त विवरण है और दूसरे भाग में उनके साहित्य या बानी का संग्रह है। यद्यपि पहले भाग में मैं कुछ और अधिक विवेचन करना चाहता था और अपनी अंग्रेजी पुस्तक की सामग्री का कुछ और महत्व पूर्ण अंश देना चाहता था तथापि अन्यान्य व्यस्तताओं के कारण यह संभव न हो सका। फिर भी इसमें जो सामग्री दी गई है वह संत रविदास के जीवन और दर्शन का पर्याप्त परिचय देती है। यदि पाठकवृन्द ने इस ओर मेरा उत्साह बढ़ाया तो भविष्य में इस भाग को और विस्तृत किया जायगा।

पुस्तक के दूसरे भाग में संत रविदास के १०८ पद और ७ साखियों का संकलन किया गया है। इसको सुबोध बनाने के लिए कठिन शब्दों का अर्थ तथा विशेष दार्शनिक तथा धार्मिक सिद्धान्त दे दिये गये हैं। आशा है इससे पाठकों को संत रविदास की बानी को समझने में सहायता मिलेगी।

(VI)

हमारा उद्देश्य संत रविदास के धर्म-दर्शन की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करना है जो आधुनिक भारत की जनता के लिए ग्राह्य तथा उपयोगी हो। हमारी मान्यता है कि प्रत्येक भारतीय को संत रविदास के पदों और दर्शन का ज्ञान होना आवश्यक है। इससे अपने राष्ट्र की भावात्मक एकता बढ़ेगी, एक नया समाज बनेगा जिसमें छुआछूत, ऊंच-नीच के भाव और धार्मिक संकट के दोष न रहेंगे। और कम से कम यह प्रचलित मत गलत हो जायगा कि भारतीय धर्म और दर्शन में केवल द्विजों का ही योगदान रहा है और शूद्रों का योगदान उसमें कुछ नहीं रहा है।

आधुनिक भारत में हरिजनों का विकास अनिवार्य है। इस विकास के प्रयास में कहीं ऐसा न हो कि उनका आध्यात्मिक विकास रुक जाय और केवल भौतिक विकास ही हो। भौतिक विकास के साथ ही साथ आध्यात्मिक विकास की भी आवश्यकता है। संत रविदास का अध्यात्मवाद या संतमत आधुनिक समाजवाद के सर्वथा अनुकूल है—ऐसी हमारी मान्यता है। अतएव आज के समाजवादी युग में संत रविदास के मत की बड़ी आवश्यकता है। उनका जन्म ही जन-जाति में होना तथा अध्यात्मवाद में उच्चाति-उच्च गति को उपलब्ध करना आज के लिए प्रेरणा की वस्तु है। वे ही आज अध्यात्मवाद के संरक्षक हैं।

संत रविदास की वाणी विमल थी, उनका धर्म पवित्र था और उनका दर्शन तर्कसङ्गत था। उनमें प्राचीन धार्मिकता और नवीन सन्तमत का सामञ्जस्यपूर्ण मेल है। यदि उनको आधुनिक भारत का सद्गुरु कहा जाय तो शायद अतिशयोक्ति न होगी। इस राष्ट्रीय सद्गुरु के विचारों को समझना हम सब का परम कर्तव्य है।

(VII)

इस पुस्तक के प्रथम भाग के कुछ अंश विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे । उनको यहाँ उद्धृत करने की अनुमति देने के लिए हम उनके संपादकों और प्रकाशकों के आभारी हैं ।

इस के द्वितीय भाग में रैदास का प्रमाणित साहित्य दिया गया है । इसका संग्रह करने के लिए सम्बन्धित समस्त प्रकाशित सामग्री तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित रैदास-बानी की हस्तलिखित प्रति का उपयोग किया गया है । फिर भी इसमें रैदास-साहित्य का पाठालोचनात्मक विवरण नहीं है । इस अभाव को दूर करने के लिये हिन्दी के विद्वानों को रैदास की बानी का प्रकाशन और सम्पादन सभी प्राप्त हस्तलिखित सामग्री के आधार पर करना चाहिए । जैसे कबीर की बाणी का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है वैसे ही रैदास की बाणी का अध्ययन-अध्यापन होना चाहिये । प्रस्तुत पुस्तक केवल इस उचित भाग की प्रथम भूमिका तैयार करती है । संत-साहित्य का विशेष अध्ययन विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों में होना चाहिये और साथ ही उनके दर्शन-विभागों में संतमत का अध्ययन होना चाहिये । हमारा मत है कि हिन्दी के संतों के दार्शनिक, राजनीतिक और शैक्षिक मत हैं जिनकी उपेक्षा भारतीय विश्वविद्यालयों के दर्शन-विभाग, राजनीति-विभाग तथा शिक्षा-विभाग नहीं कर सकते हैं, नहीं करना चाहिए ।

संत-साहित्य के मर्मज्ञ वियोगी हरि ने लिखा है कि सगुण भक्तों में जैसे तुलसी और मूर दो प्रमुख भक्त कवि हैं वैसे निर्गुण भक्तों में कबीर और कबीर के बाद दूसरे नंबर पर दादू हैं । सन्त दादू निःसन्देह एक महान सन्त थे । किन्तु हम वियोगी हरि के इस मत से सहमत नहीं हैं । हमारा

(VIII)

मत है कि हमारे देश की जनता निर्गुण सन्तों में पहला स्थान कबीर को देती है और दूसरा स्थान रैदास को । निर्गुण-धारा के तुलसी-सूर कबीर-रैदास हैं । हिन्दी के विद्वानों को अपना मत बनाने के पूर्व जनता के मत का भी मूल्यांकन करना चाहिये । सन्त-साहित्य में दादू-पन्थ का महत्व रैदास-पन्थ से अधिक है । किन्तु फिर भी हमारे देश की जनता, सन्त रैदास को सन्त दादू से अधिक जानती है । सन्त रैदास जितने सर्व-प्रिय हैं, रहे हैं और आगे रहेंगे भी, उतने सन्त दादू नहीं हैं । अतः सन्त रैदास का उचित मूल्यांकन होना चाहिये । वे सन्त दादू से अधिक महत्व-पूर्ण हैं । वे कबीर की बराबरी करते हैं । इसीलिए इन दोनों के बहुत-से संवाद प्रचलित हैं जिनमें इतना तो निश्चित है कि सन्त रैदास कबीर को छोड़कर अन्य सन्तों में सर्वश्रेष्ठ है ।

संगमलाल पांडेय

दर्शन पीठ

१७७ टैगोर नगर

इलाहाबाद

११ मार्च १९६६

१—रविदासदर्शनसारसर्वस्वम्

वेदर्षिबुद्धवाणीजा जिनगोरखपालिता ।
कबीररैदासख्याता पातु मां सत्परम्परा ॥१॥
दृश्यत इह यद्वस्तु सतः सा मूर्तिरुच्यते ।
सकलं खल्विदं ब्रह्म हीतिप्रसिद्धहेतुना ॥२॥
अतो मूर्तिप्रयोगेण कर्तव्यं ब्रह्मचिन्तनम् ।
प्रथमं ज्ञानिभिः सर्वैस्तत्त्वग्रहचिकीर्षुभिः ॥३॥
एकैकशो ऽखिलं विश्वं चिन्तयेद् बहुधा पुनः ।
विराजं विश्वरूपं वै द्वितीयं चिन्तयेत् क्रमात् ॥४॥
तृतीयं विविधं रूपं महतो यस्य वर्तते ।
तदनन्तं निराकारं मन्तव्यं ब्रह्म निगुणम् ॥५॥
चतुर्थं समुपासीत समग्रं नामब्रह्मणः ।
नामनिर्देशहेतो हि सर्वं नामनि विद्यते ॥६॥
पञ्चमं नाम यस्यास्ति ग्राह्यं तद् ब्रह्मनामि वै ।
नाम्नोऽसत्त्वं प्रसिद्धं हि मायान्तःपातकारणात् ॥७॥
संवित्तिवर्णनं सर्वं संवित्ते विद्यते पृथक् ।
अपरोक्षानुभूतिर्वै तीरवात्मबोधनम् ॥८॥
उपशान्तोऽयमात्मान्ते ऽतो वेद्यं ब्रह्मनिर्वचः ।
एवं षडंगरूपेणोक्तं ब्रह्म रैदासेन वै ॥९॥
भाषे प्रणम्य तत्त्वज्ञं तमहं सङ्गमाभिधः ।
यत्पवित्रं तत्त्वज्ञानं प्रोक्तं तेन महात्मना ॥१०॥

२—शूद्रों की प्रतिष्ठा

भारतीय समाज में शूद्रों को नीच समझा जाता रहा है। उनकी संख्या अधिक है। इतने बड़े समाज को नीच कहने से भारत ही नीच हो जाता है। यदि भारत को ऊंचा उठाना है तो उसके समाज के सभी लोगों को ऊंचे उठाना होगा, विशेषतः शूद्रों को।

गान्धी जी ने शूद्रों को हरिजन कहा और ऐसा नाम देकर उनको प्रतिष्ठित करना चाहा। हरिजन का अर्थ हरि या भगवान् का भक्त है। भक्त भारत में सदा प्रतिष्ठित रहा है। इसलिये यदि शूद्र भक्त हो जाते हैं तो वे प्रतिष्ठित हो जायेंगे। फिर शूद्र-जातियों में उत्पन्न तमाम भक्तों को मध्य युगीन साहित्य में हरिजन कहा जाता है। इन भक्तों में संत रविदास अग्रगण्य हैं। इन सभी भक्तों का समाज में आदर था, यहां तक कि ब्राह्मण लोग भी इनको प्रणाम करते थे। जब गान्धी जी ने शूद्रों को हरिजन कहा तो उनका तात्पर्य यह था कि शूद्रों की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति होनी चाहिए और इस उन्नति के बिना शूद्रों की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

गान्धी जी के विपरीत कुछ लोग सोचते हैं कि यदि शूद्रों की आर्थिक दशा सुधर जाय, यदि वे शिक्षित हो जाय और यदि उन्हें कुछ प्रशासनिक पद मिल जाय तो समाज में उनकी प्रतिष्ठा स्थापित हो जायगी। इन लोगों का विचार है कि शूद्रों की प्रतिष्ठा उनकी सामाजिक और आर्थिक उन्नति होने पर होगी। किन्तु शूद्रों की आर्थिक और सामाजिक उन्नति होने पर उनकी प्रतिष्ठा हो जायगी—यह सन्देहास्पद है। उनकी प्रतिष्ठा तभी होगी जब उनका चरित्र अच्छा होगा। चरित्र के अच्छे होने में नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का योगदान है। चरित्र के सामने अर्थ, शक्ति और पद सब मूल्यहीन हैं। इसलिये प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए शूद्रों को अपने चरित्र का सुधार करना चाहिए या दूसरे शब्दों में अपना नैतिक और आध्यात्मिक विकास करना चाहिए।

शूद्रों की आर्थिक उन्नति के हिमायती डा० अम्बेडकर ने भी इसीलिए शूद्रों के धार्मिक विकास पर बल दिया। उन्होंने तो वास्तव में एक प्रश्न ही खड़ा कर दिया कि शूद्रों का धर्म कौन हो ? सभी धर्मों का विचार करने के बाद उन्होंने महायान बौद्ध धर्म को शूद्रों का धर्म बतलाया।

शूद्रों का धर्म

किन्तु क्या महायान बौद्ध धर्म शूद्रों का धर्म हो सकता है ? वास्तव में सभी धर्मों में महान् पुरुष पैदा हुए हैं और उनके द्वारा उनकी धार्मिक उन्नति हुई है। किन्तु जब एक बड़े समाज के धर्म का प्रश्न उठता है तब इसका उत्तर एक व्यक्ति के ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता है। व्यक्ति का धर्म-परिवर्तन और समाज का धर्म-परिवर्तन एक ही नहीं हैं। दोनों के कारण, रूप और फल भिन्न-भिन्न हैं। किसी समाज का कोई व्यक्ति अपने धर्म का परिवर्तन कर सकता है। किन्तु पूरा समाज अपने धर्म का परिवर्तन नहीं कर सकता है। अतः जब हम पूछते हैं कि क्या महायान बौद्ध धर्म शूद्रों का धर्म हो सकता है तब पहले हमें यह जानना चाहिए कि इस समय शूद्रों का क्या धर्म है ?

इस समय शूद्रों का धर्म हिन्दू धर्म है जिसका विकसित रूप संतमत है। संतमत ने शूद्रों का नैतिक और आध्यात्मिक विकास किया है, बहुतों को दुर्लभ धार्मिक अनुभूतियाँ कराई हैं और समस्त जनता को धर्म-भाषा प्रदान की है। इस मत के फलस्वरूप ही आज निरक्षर लोग भी ब्रह्म, माया, भक्ति, ज्ञान, कर्म, सृष्टि, जीव, जड़ इत्यादि दार्शनिक प्रश्नों को पूछते हैं और स्वयं कुछ उत्तर भी देते हैं। फिर यह संतमत आधुनिक भाषाओं में है और इसके प्रचारक देश के कोने-कोने में अपने-अपने पंथ का प्रचार करते चले आ रहे हैं। कहना नहीं होगा कि संतमत इस समय भारत में बहमूल है और इसका उन्मूलन करना असंभव है। यदि कदाचित् उसका उन्मूलन हो भी जाय तो एक सांस्कृतिक और राष्ट्रीय संकट उत्पन्न हो जायगा। वह हमारी संस्कृति और राष्ट्रीयता का प्राण है। उसके मरने पर या बदलने पर हमारी संस्कृति

और राष्ट्रीयता बदलेंगी । फिर उसके स्थान पर किसी दूसरे धर्म को आरोपित करना भी असंभव है । वास्तव में डा० अम्बेडकर के पहले भी कुछ प्रयास किए गए कि शूद्रों का धर्म-परिवर्तन कर दिया जाय । मुसलमानों ने उन्हें मुसलमान बनाया और ईसाईयों ने ईसाई । सिक्खों ने भी उन्हें अपने मत में लाने का प्रयास किया । किन्तु जो शूद्र इन धर्मों में दीक्षित हुए उनके ऊपर वे ही प्रभाव बने रहे जो हिन्दू-शूद्रों पर प्रभावी रहे । अतः स्वयं अम्बेडकर ने स्वीकार किया है कि इन धर्मों से शूद्रों की धार्मिक समस्या का हल नहीं हुआ है । किन्तु जब इस ऐतिहासिक तथ्य को जानकर भी वे शूद्रों पर महायान बौद्ध धर्म लादते हैं तब उनकी बुद्धि पर आश्चर्य होता है । एक समय था जब महायान बौद्ध धर्म का प्रचार भारत में पर्याप्त मात्रा में था । आज वह धर्म यहां नहीं रह गया । भारत के पड़ोसी देशों में भी महायान बौद्ध धर्म नहीं है किन्तु हीनयान बौद्ध धर्म फैला हुआ है जैसे श्रीलंका और ब्रह्मा में । ऐसी परिस्थिति में एक कालातीत धर्म को भारतीय जनता पर लादना धार्मिक दृष्टि से ठीक नहीं है । महायान बौद्ध धर्म के उत्पत्ति और विकास के बाद संतमत के उत्पत्ति और विकास हुए । संतमत पर महायान बौद्ध धर्म का भी प्रभाव पड़ा है और संभवतः उतना ही जितना वैदिक धर्म का । अतएव संतमत को ही शूद्रों का यथार्थ धर्म मानना चाहिए । यही आज वस्तुतः उनका धर्म है । इसी धर्म को उनके सद्गुरुओं ने बताया है । इन सद्गुरुओं में संत रविदास का मुख्य स्थान है ।

रविदास और अम्बेडकर

यदि नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से संत रविदास और डा० अम्बेडकर की तुलना की जाय तो संत रविदास का महत्व डा० अम्बेडकर से अधिक समझा जायगा । डा० अम्बेडकर को धर्म की वह स्वानुभूति नहीं थी जो संत रविदास को थी । संत रविदास का चरित्र जितना शुभ्र और पवित्र था उतना डा० अम्बेडकर का चरित्र नहीं था । संत रविदास को ईश्वर-लाभ हुआ था

और उन्होंने दूसरों को भी भगवत्प्राप्ति कराई थी । किन्तु ऐसा दावा डा० अम्बेडकर नहीं कर सकते थे ।

वास्तव में डा० अम्बेडकर की दृष्टि शूद्रों के आर्थिक, शैक्षणिक और सामाजिक स्तर को ऊंचा करने में थी । इस दृष्टि से उन्होंने जो किया और सोचा उसे संत रविदास ने नहीं सोचा और किया । किन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि संत रविदास ने जो सोचा और किया वह गलत है और डा० अम्बेडकर ने जो सोचा और किया वह ठीक है ।

हमारा मत है कि धर्म के क्षेत्र में संत रविदास का ज्ञान और कर्म डा० अम्बेडकर के ज्ञान और कर्म से अधिक ऊंचा और महत्वपूर्ण है यद्यपि भौतिक विकास के क्षेत्र में डा० अम्बेडकर का ज्ञान और कर्म संत रविदास के ज्ञान और कर्म से श्रेयस्कर है । इससे आध्यात्मिक विकास के लिए संत रविदास का मार्ग और भौतिक विकास के लिए डा० अम्बेडकर का मार्ग अपनाना चाहिए । महात्मा गान्धी ने संत रविदास के अध्यात्मवाद और डा० अम्बेडकर के समाजवाद का समन्वय किया है । इसलिए इस समन्वय के सामने डा० अम्बेडकर का मत कमजोर पड़ जाता है । धर्म के क्षेत्र में संत रविदास ही सबसे बड़े सद्गुरु हैं । महात्मा गान्धी, डा० अम्बेडकर आदि उसके सामने नगण्य हैं ।

नाभादास ने संत रविदास के महत्वपूर्ण स्थान का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—

सदाचार श्रुति शास्त्र वचन, अविरुद्ध उचार्यो ।
नीर क्षीर विवरन परम हंसन उर धार्यो ॥
भगवत कृपा प्रसाद परम गति यहि तनि पाई ।
राज सिंहासन बैठि ज्ञाति परतीत कराई ॥
वर्णाश्रम अभिमान तजि, पद-रज बन्दहि जासु की ।
सन्देह-ग्रन्थि खण्डन निपुन वाणि विमल रैदास की ॥

संत रविदास की बाणी विमल है । उन्होंने वेद और शास्त्र तथा सदाचार के अनुकूल ही वचन कहे अर्थात् संत रविदास का मार्ग वेद, शास्त्र और सदाचार के अनुकूल है । उन्होंने इसी शरीर से परमगति प्राप्त की और अपने ज्ञान को प्रमाणित ठहराया । उनकी बाणी अनेक सन्देहों के खण्डन में सक्षम थी । ऐसे सद्गुरु का महत्व भला कभी कम हो सकता है ?

इसलिए यद्यपि राजनीति में डा० अम्बेडकर का महत्व है किन्तु धर्म में संत रविदास का महत्व है और रहेगा । संत रविदास का कोई राजनैतिक मत नहीं था । वे जागतिक प्रपंच से उदासीन थे । उन्होंने केवल परम तत्त्व को पकड़ा था और उसको इतनी गहराई से पकड़ा था जो अन्यत्र दुर्लभ है । आज भी लोग उनके वचनों का पालन करके भगवत्प्राप्ति कर रहे हैं, कर सकते हैं ।

आज वास्तव में रविदास धर्म के प्रतीक हैं । उनका व्यक्तित्व यह बताता है कि कैसे एक गरीब, नीच और निरक्षर व्यक्ति स्वयं भगवान् को प्राप्त कर सकता है और औरों को भी प्राप्त करा सकता है । उनको सर्वहारा वर्ग का अद्वितीय संत कहा जा सकता है । यों तो हरिजनों में अनेक शूद्र-जाति में उत्पन्न हुए थे, किन्तु संत रविदास उन सभी में सर्वश्रेष्ठ हैं । उनको शूद्राचार्य शिरोमणि कहा जा सकता है । किन्तु ऐसा कहना यह अभिप्राय रख सकता है कि वे शूद्रेतर जनों के संत नहीं हैं, इसलिए उनके वास्तविक व्यक्तित्व को उभारने के लिए उन्हें दलित और पिछड़े लोगों का संत कहना अधिक संगत है फिर वे लोग चाहे जिस जाति के हों । वे समस्त दीन-हीन जनता के संत हैं और सभी को समान रूप से संत होने की प्रेरणा देते हैं । हर आदमी समझ सकता है कि यदि रविदास को भगवान् मिल सकते हैं तो उसे क्यों नहीं मिल सकते ?

३—रविदास के विभिन्न नाम

रविदास के कुल १२ नाम मिलते हैं जिनमें से कुछ उनके नाम नहीं हैं ।

(१) रविदास—गुरुग्रन्थ साहब में ४० पद और एक सलोक संत रविदास के नाम से मिलते हैं । ये रविदास काशीवासी चमार जाति के थे ।

(२) रैदास—रैदास जी की बानी में ८७ पद और ३ साखियां संगृहीत हैं । इनके लेखक का नाम 'रैदास' दिया गया है । बहुत से पद गुरुग्रन्थ साहब के पदों से तनिक हेर-फेर के साथ मिलते हैं । ये रैदास भी चमार जाति के और काशी के निवासी हैं । अतएव स्पष्ट है कि रविदास और रैदास एक ही व्यक्ति हैं । ये दो नाम संभवतः एक ही नाम के दो रूप हैं ।

(३) रयदास—भक्त पचीसी के लेखक पं० खेमदास ने रैदास को रयदास लिखा है । ये दोनों नाम ध्वनि में एक ही हैं यद्यपि लिपि में भिन्न प्रतीत होते हैं ।

(४) रुइदास—डा० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त ने अपनी पुस्तक "हिन्दू मिस्टिसिज्म" में रविदास को 'रुइदास' कहा है । यह नाम रयदास नाम का ही बंगला भाषा में रूप है ।

(५) रुईदास—यह नाम भी रुइदास का ही रूप है और बंगाल में प्रचलित है ।

(६) रयिदास—भगवान रविदास की सत्यकथा में यह नाम भी दिया गया है । यह रयदास और रैदास का ही बिगड़ा रूप है ।

(७) रोहीदास—मीरा अपने गुरु रैदास का रोहीदास नाम भी देती है ।

भांभ पखावज बेणु बाजियां, भालर नो भनकार ।

काशी नगर मा चौक मा मने गुरु मिला रोहीदास ।

महाराष्ट्र में तुकाराम, प्रो० रानाडे तथा विनोबा भावे के कथनानुसार रविदास को ही लोग रोहीदास कहते हैं। यह नाम रैदास का ही विकृत रूप है।

(८) रोहीदास—भगवान रविदास की सत्य कथा में यह नाम दिया गया है। यह रोहीदास का ही विकृत रूप है।

(९) रहदास—रैदास रामायण के मुख-पृष्ठ पर 'रहदास रामायण' लिखा हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि रहदास भी रैदास का दूसरा विकृत रूप है। पर पुस्तक के भीतर रहदास नहीं आया है। इससे प्रतीत होता है कि मुख-पृष्ठ पर वस्तुतः 'रयदास रामायण' होना चाहिये था पर भूल से 'रहदास रामायण' छप गया। रहदास रोहीदास का विकृत रूप भी हो सकता है।

(१०) रमादास—जो लोग रैदास को रामानन्द का शिष्य मानते हैं वे रैदास का एक नाम रमादास भी देते हैं। 'रमादास' शब्द रविदास या रैदास का विकृत रूप नहीं हो सकता है। रविदास का कोई दूसरा नाम भी प्रमाणित सूत्र से नहीं जाना गया है। अतएव यह नाम वस्तुतः रविदास का नाम नहीं है। रमादास कोई दूसरे व्यक्ति थे।

(११) रामदास—भगवान रविदास की सत्य कथा में लिखा है कि पंजाब में रविदास को रामदास कहते हैं। पर यह गलत है। ब्रिग्ज का कहना है कि कुछ सिक्ख चमार रामदासी कहे जाते हैं। रामदासियों को लोग भूल से रैदासी समझ बैठते हैं।* फिर वे रामदास और रैदास को एक मान बैठते हैं। वस्तुतः जैसा आगे दिखाया जायगा रैदास विशुद्ध हिन्दू थे और हिन्दू धर्म के पोषक थे। रामदासी लोग सिक्ख हैं और नानक पंथी हैं। रामदास नाम के कई व्यक्ति हो चुके हैं जिनमें से (१) रामदास कबीरपंथी, (२) सिक्खों के चौथे गुरु रामदास, (३) रामदास धरनीदासी, (४) रामदास मलूकपंथी और (५) शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास मुख्य हैं। इन सभी

से रविदास भिन्न हैं। अतएव रामदासी रैदासी नहीं हैं और न रामदास और रविदास ही एक व्यक्ति के दो नाम हैं। चमारों में सिक्ख चमार, कबीरपंथी चमार और हिन्दू चमार मुख्य हैं। इनमें से रैदासी हिन्दू चमार हैं। नानकपंथ और कबीरपंथ हिन्दू धर्म के अंग होते हुए भी इस धर्म से कुछ महत्वपूर्ण विषयों में भिन्न हैं। पर जैसा हम आगे देखेंगे, रैदास का मत और सम्प्रदाय विशुद्ध हिन्दू है।

(१२) हरिदास—जो लोग 'व्यास' जी के पद के अनुसार हरिदास को रविदास मानते हैं उनके अनुसार हरिदास और रविदास एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। पर हरिदास न तो रविदास का विकृत रूप है और न दूसरा नाम ही। श्री वियोगी हरि जी ने अपने संत सुवासार में रविदास की एक साखी यों दी है—

सब सुख पावैं जासु तें, सो हरिजू को दास *
कोउ दुख पावैं जासु तें, सो न दास हरिदास।

इससे सिद्ध किया जाता है कि हरिदास रविदास का ही नाम है। यद्यपि रविदास हरि के भक्त थे, लेकिन उनका नाम हरिदास नहीं था। उपर्युक्त साखी का वस्तुतः यह अर्थ है कि जिस दास से कोई भी व्यक्ति दुःख पाता है, वह हरिदास नहीं है। अतएव यहां हरिदास का अर्थ हरि का भक्त है। इससे सिद्ध होता है कि रहदास, रमादास, रामदास और हरिदास भूल से रविदास के नाम माने जाते हैं।

रविदास नाम में दो शब्द हैं रवि और दास। मुख्य नाम रवि है। जैसे सूरदास को सूर, तुलसीदास को तुलसी तथा कबीरदास को कबीर कहकर संक्षेप में संबोधित किया जाता है वैसे रविदास को रवि कहकर संबोधित किया जा सकता है।

रविदास के विभिन्न नामों पर विचार करने से कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रकट होते हैं—

(१) रविदास का नाम संपूर्ण देश में विख्यात है । संभव है रविदास ने अन्य संतों के समान संपूर्ण देश का भ्रमण किया हो । किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि उनका नाम संपूर्ण देश में तभी विख्यात हुआ जब उनका कृतित्व और व्यक्तित्व सर्वत्र विदित हो गया । वे अखिल भारतीय राष्ट्रीय संत हैं । राजस्थान से लेकर बंगाल तक और पंजाब से लेकर महाराष्ट्र तक अनेक संत और साधक उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं । उनके कुछ पद लोकप्रिय हैं ।

रविदास का महत्व केवल हिन्दी भाषा और हिन्दी प्रान्तों में ही नहीं है वरन् भारत की सभी आधुनिक भाषाओं में तथा भारत के सभी प्रान्तों में भी है । उन्होंने भारत की भावात्मक एकता में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

(२) इन नामों की उत्पत्ति का कारण भारतीय भाषाओं की पारस्परिक भिन्नता-अभिन्नता है । संभवतः एक ही नाम रविदास भाषा-भेद के कारण विभिन्न भाषाओं में विभिन्न रूपवाला हो गया । पंजाबी का रयदास, बंगाल का रुईदास तथा मराठी का रोहीदास वही है जो हिन्दी का रविदास या रैदास है । इन नामों के माध्यम से हम हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के संबन्ध का कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ।

४—रविदास का समय

रविदास के जन्म एवं निधन की तिथियां विवादग्रस्त हैं। उनको ठीक-ठीक बता सकना कठिन है। किन्तु अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर हम उनके जीवन-काल का सत्यप्राय आकलन कर सकते हैं।

रविदास स्वयं कहते हैं कि उनके पहले नामदेव, कबीर, तिलोचन, सधना और सेन संसार-सागर को पार कर चुके हैं—

‘नामदेव कबीर तिलोचन सधना सेनु तरे।’

इससे स्पष्ट है कि रविदास ने इस पद को उस समय लिखा जब कबीर और सेन का स्वर्गवास हो गया था। कबीर की मृत्यु का समय निश्चित नहीं है। पं० परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि उनकी मृत्यु १४४८ ई० में हुई। किन्तु अन्य लोगों का मत है कि उनकी मृत्यु १५१८ ई० में हुई। सेना नाई की मृत्यु की भी तिथि निश्चित नहीं है। प्रो० रानडे ने लिखा है कि वे लगभग १४४८ ई० में पैदा हुए थे।

फिर कबीर ने संत रविदास का उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि कबीर के नाम से दो पद मिलते हैं जिनमें रविदास का नामोल्लेख हुआ है, तथापि ये पद कबीर-ग्रन्थावली में नहीं मिलते हैं। अतः उनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। वे संभवतः किन्हीं अन्य व्यक्ति के पद हैं और कबीर के नाम मढ़ दिए गए हैं।

इन आधारों पर हमारा अनुमान है कि रविदास का जन्म कबीर की मृत्यु के बाद हुआ अथवा जिस समय कबीर का देहपात हुआ उस समय रविदास अधिक से अधिक किशोरावस्था में रहे होंगे।

संत धन्ना रविदास का नामोल्लेख करते हैं। किन्तु उनके उल्लेख से यह स्पष्ट नहीं है कि उनके समय में रविदास का देहपात हो गया था। संभव है संत रविदास ने अपने जीवन-काल में ही धन्ना को प्रभावित किया हो और धन्ना उनका तरुण समकालीन हो।

मीराबाई ने रविदास तथा धन्ना दोनों का उल्लेख किया है । रविदास को तो वे अपना गुरु ही बताती हैं और धन्ना के बारे में उनका कहना है कि उन्होंने बिना बोए खेत में गेहूँ उगा दिया था । कुछ लोगों का मत है कि रविदास मीरा के गुरु नहीं थे । कुछ लोग यह भी कहते हैं कि रविदास मीरा के आध्यात्मिक गुरु तो थे किन्तु ऐसा रविदास की मृत्यु के अनन्तर भी संभव है । दिवंगत पुरुषों को भी लोग गुरु बना लेते हैं । कुछ लोग मीरा के उन पदों को ही अप्रामाणिक मानते हैं कि जिनमें रविदास का उल्लेख हुआ है । कुछ लोग किन्हीं अन्य रविदास को मीरा का गुरु मानते हैं । किन्तु ये सभी मत ठीक नहीं प्रतीत होते हैं । मीरा के उन पदों की प्रामाणिकता सत्यापित हो गई है । मीरा—जैसे आर्त भक्त को कोई जीवित महात्मा ही शिष्य बना सकता है । किसी अन्य रविदास की कल्पना करना भी इतिहास-विरुद्ध है । अतः यह सरलता से माना जा सकता है कि रविदास मीरा के गुरु थे ।

मीरा और रविदास को भिन्न-भिन्न समय में मानना और फिर इस आधार पर कहना कि रविदास मीरा के गुरु नहीं थे और इस संबन्ध में मीरा के पदों को प्रक्षिप्त मानना वास्तव में चक्रकदोष से ग्रस्त चिन्तन है । मीरा के इन पदों को प्रामाणिक मानते हुए यह मानना अधिक तर्कसंगत है कि मीरा और रविदास दोनों समकालीन थे और इस समकालीनता के आधार पर रविदास के समय का निश्चय होना चाहिए ।

यहां पर यह भी उल्लेखयोग्य है कि जो लोग रविदास को रामानन्द का शिष्य और कबीर का समकालीन मानते हैं वे ही कहते हैं कि रविदास मीरा के गुरु नहीं थे । किन्तु यदि यह विवाद हो कि संत रविदास का संबन्ध किससे अधिक है रामानन्द से या मीरा से ? तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संत रविदास का मीरा से जितना संबन्ध है उतना रामानन्द से नहीं । अतएव रविदास के समय को निश्चित करने का आधार-बिन्दु रविदास तथा मीरा का गुरु-शिष्य का संबन्ध होना चाहिए ।

मीरा युवती थी और रविदास वृद्ध थे । धन्ना की आयु दोनों के मध्य में थी । यही इन तीनों संतों का कालिक संबन्ध प्रतीत होता है ।

मीरा ने रविदास की भेंट का वर्णन यों किया है—

मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी ।
हियड़े पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी ॥
रात दिवस म्हाने नींद न आवे, भावे अन्न न पानी ।
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन विहानी ॥
ऐसा बैद मिलै कोई भेदी, देश-विदेश पिछानी ।
तासों कहूँ दुःख तन अपना, फिर नहीं भरमौ खानी ॥
खोजत फिरौं भेद वा घर को कोई न करत बखानी ।
सतगुरु सन्त मिले रैदासा, दीन्ह सुरत सहदानी ॥
मैं मिली आय पाय पिय अपना, तब मन तान बुझानी ।
मीरा खाक खलक सिर डाली, सत घर अपना जानी ॥

और—

ज्ञान बान हियड़ा में बीधा, प्रेम फांस पकड़ी ।
'मीरा' प्रभु सतगुरु गुण गावे, धन धन आज घड़ी ॥
गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुर से कलम भिड़ी ।
सतगुरु सैन दई जब आके, ज्योति में ज्योति भिड़ी ।

इन पदों से स्पष्ट है कि रविदास ने मीरा का पागलपन अच्छा कर दिया था, उसको आध्यात्मिक ज्ञान दिया था और उसे आत्म-साक्षात्कार कराया था ।

रविदास के पदों में एक पद ऐसा है जिसमें आध्यात्मिक चिकित्सा-पद्धति का वर्णन है । वह पद निम्न है—

जैसे कामी देखि कामिनी हृदय सूत्र उपजाई ।
 कोटि बैद विधि ऊचरै, वाकी बिथा न जाई ।
 जो तेहि चाहे सो मिले, आरत गति होई ।
 कह रैदास यह गोप नहि, जानत सब कोई ॥

हमारा मत है कि इस पद में उसी चिकित्सा-पद्धति का वर्णन किया गया है जिसके द्वारा संत रविदास ने मीरा का पागलपन दूर किया था । संभवतः यह पद मीरा को हो संबोधित करके कहा गया है । इसमें हृदय-शूल, आर्त-गति तथा गोपनीय चिकित्सा-पद्धति का स्पष्ट वर्णन है । इस पद्धति को विरले ही जानते हैं । ऐसा उल्लेख मीरा ने भी किया है । यही बात रविदास कहते हैं । दोनों के वर्णन में पर्याप्त साम्य है । इसको हम मीरा तथा रविदास के संबन्ध को प्रमाणित करने वाला अन्तर्साक्ष्य मान सकते हैं ।

इस प्रकार हम रविदास के समय के बारे में निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

(१) रविदास रामानन्द के शिष्य नहीं थे । इसका कारण यह है कि रामानन्द का समय १३६५ ई० से लेकर १४१० ई० तक है और यह समय रविदास के समय के बहुत पूर्व है ।

(२) कबीर और रविदास समकालीन नहीं थे । उनके तथाकथित संवाद कपोल-कल्पित हैं । सेना का लिखा हुआ कबीर और रविदास-संवाद तथा रैदास रामायण कबीर और रैदास के संवाद का उल्लेख करते हैं । किन्तु पहला ग्रन्थ कबीरपंथ का है और दूसरा ग्रन्थ रैदासपंथ का । दोनों की ऐतिहासिकता संन्दिग्ध है । किन्तु कबीर और रविदास में समय का संबन्ध इस प्रकार हो सकता है कि जब कबीर लगभग ८० वर्ष के थे तब रविदास दुधमुँहे बच्चे थे अर्थात् एक वृद्ध था और दूसरा शिशु था ।

(३) धन्ना रविदास के छोटे समकालीन थे । रविदास धन्ना से कम से कम पच्चीस वर्ष बड़े थे । इतना समय धन्ना तक रविदास की यशोगाथा पहुँचने के लिये पर्याप्त प्रतीत होता है ।

(४) रविदास मीरा बाई के सद्गुरु थे । दोनों की अवस्था में पर्याप्त अन्तर था । धन्ना भी मीरा बाई से कम से कम पच्चीस वर्ष बड़े थे । अतः अनुमान है कि रविदास मीरा बाई से कम से कम पचास वर्ष बड़े थे ।

मीरा बाई का समय १५०३ ई० से १५४६ तक था, यह निश्चित हो चुका है । अतः रविदास का समय स्थूल रूप से १४५० ई० से १५४० के मध्य निश्चित किया जा सकता है । इस प्रकार उनकी आयु लगभग ६० वर्ष की ठहरती है जो एक महात्मा के लिए दुर्लभ नहीं है ।

इस अनुमान का अनुमोदन हिन्दी हस्तलिपियों के अनुसन्धान से तथा ब्रिज महोदय की गवेषणा से भी होता है । अतः इसको प्रायः सत्य माना जा सकता है ।

५—रविदास का इतिवृत्त

जाति

रविदास ने अपनी जाति को चमार कहा है ।

१—ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारं

२—जाति भी ओछी करम भी ओछा,

ओछा कसब हमारा ।

नीचै से प्रभु ऊंच कियो है,

कह रैदास चमारा ।

३—हम से दीन, दयाल न तुमसे,

चरनसरन रैदास चमइया ।

४—कह रैदास खलास चमारा,

जो हमसहरी सो मीत हमारा ।

५—मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी,

ओछा जनमु हमारा ।

तुम सरनागति राजाराम रामचंद,

कहि रविदास चमारा ।

६—चमरटा गांठि न जनई ।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि रविदास चमार जाति में उत्पन्न हुये थे । उन्होंने इसी जाति को चमइया और चमरटा कहा है । यह नीची, ओछी, और कमीनी जाति थी । रविदास अपने को नीच, ओछा और कमीना कहने में लजाते नहीं थे । उनके सामने सभी जातियां बराबर थीं । जो मनुष्य अपनी जाति का, अपने माता-पिता का, विशुद्ध होगा, उसे अवश्य ही अपने कुल, वंश एवं परम्परा पर गर्व होगा । यही गर्व रविदास को भी था । इसीसे उन्होंने अपने को 'खलास' चमार कहा है । उनके चमार होने में कोई संदेह

नहीं है। वे विशुद्ध हैं, दोगले नहीं हैं। यही 'खलास' का अभिप्राय है। प्रियादास और अनंतदास ने इनको पूर्व जन्म का ब्राह्मण बतलाया है। पर यह गलत धारणा है। पूर्व जन्म की बात कोई नहीं जानता। यदि ये लोग रविदास के समय में होते तो उनसे वे कहते, "मैं 'खलास' चमार हूँ, बिल्कुल पवित्र और सच्चा। मैं ब्राह्मण होकर क्या करूँगा? जाति से तो कोई ऊँचा पद नहीं मिलता है।"

"जाति ते कोई पद नहि पहुँचा, राम भगति बिसेख रे।"

अतएव डा० बड़थवाल का कहना सर्वथा उचित है कि रविदास अपनी जाति को महत्व देना जानते थे।*

माता-पिता

रविदास के माता पिता का कोई प्रमाणिक नाम नहीं मिलता है। रैदास जी की बानी में इनके पिता का नाम रघू और माता का घुरबिनिया बताया गया है। पर रैदास रामायण में पिता का नाम राहू और माता का नाम कर्मा बताया गया है। इसमें इनके पितामह का नाम हरिनन्द और मातामही का नाम चत्रकौर दिया गया है। पर ये सभी काल्पनिक नाम हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ ही पुराण की भाँति झूठा है। इससे रविदास के माता-पिता का यह नाम नहीं माना जा सकता है। रैदास रामायण से अधिक प्रमाणित 'बानी' है। अतएव उसी के आधार पर रविदास के पिता का नाम रघू और माता का नाम घुरबिनिया माना जा सकता है।

उद्यम और जन्म-स्थान

धन्ना का कहना है कि रविदास नित्य मृत पशुओं के ढोने का कार्य करते थे। रविदास स्वयं इस बात का प्रमाण देते हैं :—

*निर्गुण स्कूल आव् हिन्दी प्योट्री पृ० १८१।

१—मेरी जाति कुटवां ढला ढोर ढोवता,
नितहि बनारसी आसपासा ।

२—जाके कुटुंब के ढेढ सभ ढोर ढोवत,
फिरहि अजहुँ बनारसी आस-पासा ।

अर्थात् रविदास की जाति के व्यक्ति ढेढ के नाम से विख्यात थे । वे बनारस के आस-पास मरे हुये पशुओं को ढोते थे । आज भी चमार यह कार्य करते हैं ।

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि रविदास बनारस के रहने वाले थे । एक पद में उन्होंने काशी का भी नामोल्लेख किया है—

कह रैदास सहज सुन्न सत, जिवनमुक्त निधि कासी ।

इनकी भाषा से भी पता चलता है कि ये काशी के निवासी थे । गुरुग्रन्थ साहब की भाषा में जो पंजाबीपन आ गया है वह संकलनकर्त्ता गुरु अर्जुनसिंह के कारण है । रविदास की भाषा वैसी नहीं थी । अतएव रविदास को पंजाब का निवासी नहीं सिद्ध किया जा सकता । बनारस के आस-पास ढोर ढोने वालों के कुल में रविदास पैदा हुये थे । यह स्पष्ट वर्णन उन्हीं का है । फिर भी कुछ लोग उनको महाराष्ट्र का व्यक्ति मान बैठते हैं और कहते हैं कि उनका जन्म-स्थान महाराष्ट्र भी माना जा सकता है । उनकी भाषा पर मराठी का प्रभाव बिल्कुल नहीं है । उनका 'रोहीदास चांमार' नाम से महाराष्ट्र में विख्यात होना मीरा के गुरु होने के कारण है तथा उनकी यात्राओं के कारण है ।

ढोर ढोने के अतिरिक्त वे पुराने जूतों की मरम्मत भी करते थे जैसा उनके निम्न पद से ज्ञात होता है—

चमरटा गांठि न जनई ।
लोगु गंठावै पनही ।

आर नहीं जिह तोपउ ।
 नहि रांबी ठाउ रोपउ ।
 लोग गठि गठि खरा विगूचा ।
 हउ बिनु गांठे जाइ पहुँचा ।
 रविदासु जपै राम नामा ।
 मोहि जम सिउ नाही कामा ।

इस पद में रविदास जूता सीने की प्रक्रिया और यंत्र को लेकर आध्यात्मिक वर्णन करते हैं । रांबी, आर, तोपना, रोपना, गांठना आदि का ज्ञान वे केवल भौतिक अर्थ में ही नहीं रखते थे वरन् आध्यात्मिक अर्थ भी इनका जानते थे ।

एक पद में उन्होंने अपने को 'नालीदोज' भी कहा है जिससे सिद्ध होता है कि वे जूता सीने का भी काम करते थे ।

चमड़े का सभी कार्य रविदास जी करते थे, जैसे मरे हुए जानवरों को ढोना, चमड़ा को साफ करना, नया जूता बनाना, पुराने जूते की मरम्मत करना आदि ।

जीवन की कुछ घटनायें

जैसा प्रायः देखा जाता है कि सन्तों के नाम से अनेक चमत्कारपूर्ण घटनायें जुट जाती हैं वैसे ही रविदास के पक्ष में भी हुआ । उनके बारे में अनेक घटनायें प्रसिद्ध हैं जो अनंतदास की रैदास जी की परचई, प्रियादास की टीका, भगवान रविदास की सत्यकथा, रविदास-महिमा तथा रैदास-रामायण में संगृहीत हैं । इन घटनाओं में सत्य कम है और झूठ अधिक है । ये इतिहास न होकर गल्प हैं । अतएव इनका विश्वास करना यहां अभिप्रेत नहीं है ।

किन्तु उनकी रचनाओं के आधार पर रविदास के जीवन में दो समयों का उल्लेख मिलता है, एक समय वे गरीब, गन्दे, ओछी, कमीनी और नीची

जाति वाले चमार हैं और दूसरे समय महात्मा, सन्त, भक्त, सम्मानित और प्रतिष्ठित व्यक्ति । पहले समय का उल्लेख यों है :—

- (१) दारिद्र देखि सभ को हँस ऐसी दसा हमारी ।
- (२) हम अपराधी नीच घर जनमें कुटुम्ब करै हांसी रे ।
- (३) रैदास तूँ कावच फली तूझै न छीपै कोय ।
- (४) सकट सोच पोच दिन रातो ।
करम कठिन मोरि जाती कुजाती ।

दूसरे समय का भी उल्लेख इस प्रकार है :—

- (१) अब बिप्र परधान तिहि करहि डंडउति,
तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा ।
- (२) आचार सहित बिप्र करहि डंडउति,
तिन तनै, रविदास दासानदासा ।
- (३) ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै ।
गरीब निवाजु गुसईआ मेरा माथे छत्र धरै ।
- (४) सुखसागर सुरतरु चितामनि कामधेन बसि जाके रे ।
चारि पदारथ असट महासिधि करतल ताकै ।
- (५) असट महासिधि करतलै, सभ कृपा तुमारी ।
- (६) नीचे से प्रभु ऊँच कियो है,
कह रैदास चमारा ।

अपने जीवन के दूसरे काल में रविदास को भगवान् ने ऊँचा बना दिया था । सुखसागर, कल्पतरु, चितामणि तथा कामधेनु उनके वश में थे । दारिद्र्य दूर हो गया था । आठ सिद्धियाँ और नव निधियाँ उनके हाथ में हो गई थीं । साधारण ब्राह्मण ही नहीं वरन् सदाचारी ब्राह्मण भी उन्हें दण्डवत् प्रणाम करने लगे थे । उनके ऊपर उनके अनुयायी लोग छत्र भी धारण करने लगे

थे । छत्र धारण करने को कुछ लोगों ने चमत्कारपूर्ण घटना के आवरण में ढक दिया है । उनका कहना है कि एक बार रविदास और पण्डितों में शास्त्रार्थ हुआ । शास्त्रार्थ का रूप यह रहा कि सिंहासनारूढ़ भगवान् की मूर्ति को रविदास बुलावें । यदि वह उनके हाथ में आ जायगी तो फिर पण्डित लोग उन्हें सिंहासन पर बैठाकर नगर में घुमावेंगे । रविदास जी ने मूर्ति को अपने पास बुला लिया । इससे उनकी विजय हो गई । शर्त के अनुसार पण्डितों ने उन्हें सिंहासनासीन कराकर नगर भर में घुमाया । किन्तु यह कथा अप्रामाणिक है । रविदास के सिंहासन को कंधे पर लाद कर पण्डितों का घुमाना पण्डितों को अनादृत करने के लिये गढ़ा गया है । वस्तुतः रविदास का राजसिंहासन पर बैठना ही सत्य है । यह राजसिंहासन भी उनकी जातिवालों द्वारा ही बनवाया गया था । नाभादास भी कहते हैं :—

राजसिंहासन बैठ जात परतीत दिखाई ।

रविदास कीर्ति-लोलुप न थे । वे अपनी कीर्ति को नहीं चाहते थे । यदि लोग उनकी बड़ाई करते थे, तो उसे वे अपने लिये हानिकर समझते थे । जब भक्त और महात्मा के रूप में उनकी कीर्ति बढ़ चली तो उन्होंने कहा—

अब मेरी बूढ़ी रे भाई, ताते चढ़ी लोक बड़ाई ।
अति अहंकार उर माँ सत, रज तम, तामें रह्यो उरभाई ।
कर्मन बीभ पर्यो, कछु नहिं सूझै, स्वामी नाम भुलाई ।
हम मानौ गुनी, जोग सुनि जुगता, महामुख रे भाई ।
हम मानो सूर सकल विधि त्यागी, ममता नहीं मिटाई ।

इससे स्पष्ट होता है कि रविदास अत्यन्त निःस्पृह, निरहङ्कार व्यक्ति थे । उनके जीवन काल में ऐसी घटना हो नहीं सकती जिससे कुछ लोग जो भले ही उनके शत्रु हों—दुःख पावें । वे भक्त की परिभाषा ही यह देते हैं कि हरि का दास वह है जिससे कोई दुःख न पावे ।

सब सुख पावैं जासु ते, सो हरि जू को दास ।

कोउ दुख पावैं जासु तें, सो न दास हरिदास ।

अतः स्पष्ट है कि रविदास ने परिडतों से अपना सिंहासन नहीं उठवाया । यह सारी कहानी गप है । सत्य केवल इतना है कि लोगों ने उनको पहिचाना और तदनुकूल आदर किया । एक सिंहासन बनवाया गया । उस पर बैठाकर उनको समादृत किया गया । ऐसा रविदास ने स्वयं नहीं करवाया । जो लोग अपनी इच्छा से स्वयं ऐसा करना चाहते थे, वे लोग इकट्ठे हुये और इस प्रकार उनको सम्मानित किया । रही यह बात कि ऐसा सम्मान करने वालों में से कौन व्यक्ति थे ? स्पष्ट है कि अधिकांश तो रविदास की जाति वाले चमार थे । दूसरे वे विप्र भी थे जो अपनी इच्छा से रविदास को दण्डवत् प्रणाम करते थे । रविदास की यह भावना न थी कि उनको सभी विप्र दण्डवत् करें और न तत्कालीन परिस्थिति को देखने से यही ज्ञात होता है कि सभी विप्र उन्हें दण्डवत् ही करते थे । अतएव सत्य यही है कि रविदास से प्रभावित कुछ विप्र तथा रविदास के स्वयं जाति-बंधुओं ने उनको सिंहासन पर बैठाकर सम्मानित किया ।

रविदास के जीवन की एक अन्य घटना का उल्लेख करते हुए ब्रिग्ज ने लिखा है कि रविदास १८ वर्ष की आयु में राम-जानकी की मूर्तिका-मूर्ति की पूजा करने लगे ।*

ब्रिग्ज का यह अनुमान तो ठीक है पर १८ वर्ष के पहले से भी रविदास मूर्ति-पूजक थे । उनका जन्म ऐसे परिवार में हुआ था जिसमें ब्राह्मण को पूज्य मानना, वेद-पुराण का प्रमाण मानना, मूर्ति-पूजा करना आदि कार्य होते थे । इससे धार्मिक रुचि-सम्पन्न होने के कारण रविदास बचपन से ही मूर्ति-पूजा करने लगे थे । बाद को उन्होंने मूर्ति-पूजा की आवश्यकता अपने

*दी चमार्स पृ० २०८ ।

लिए नहीं समझी । फिर भी कबीर की भांति उन्होंने मूर्ति-पूजा को व्यर्थ नहीं बताया । दूसरों के लिए इसकी आवश्यकता वे बराबर मानते रहे ।

प्रसिद्ध है कि रविदास जी ने शालग्राम की पत्थर-मूर्ति को गंगा-जल में तैरा दिया था । कुछ लोग इसकी पुष्टि उनके निम्न पद से करते हैं :—

वापुरो सत रैदास कहै रे ।

ज्ञान विचार चरन चित लावै, हरि की सरनि रहै रे ।

पाती तोड़े, पूजि रचावै, तारन तरन कहै रे ।

मूरति मांहि बसै परमेश्वर, तौ पानी मांहि तिरै रे ।

इस पद का दूसरा विपरीत अर्थ डा० बड़थवाल का है जिससे यह सिद्ध होता है कि रविदास यहां मूर्ति-पूजा की निन्दा कर रहे हैं ।* यहां बड़थवाल का कहना है कि 'यदि ईश्वर मूर्ति में है तो उसे स्वयं जल पर तैरना चाहिए' । किन्तु चूंकि वह जल पर नहीं तैरता इसलिए ईश्वर मूर्ति में नहीं है । इस प्रकार डा० बड़थवाल के अनुसार यहां मूर्ति-पूजा का खंडन है । किन्तु इस आधार पर नहीं कहा जा सकता है कि रविदास वचन में मूर्ति-पूजक नहीं थे । अधिक संभावना यही है कि वे पहले मूर्ति-पूजक थे और बाद में उस साधना से उठकर ब्रह्मोत्सुक हो गए ।

वस्तुतः एकाध करामातें रविदास जी ने अवश्य दिखाई होंगी जिसके कारण उनकी ख्याति बढ़ चली थी । गुणी, योगी, भक्त, आदि होने से कुछ न कुछ ख्याति मिलती है । साधारण जनता इनकी कसौटी यही रखती है कि वे कुछ करामातें दिखावें । रविदास के स्पष्ट वर्णन से ज्ञात होता है कि वे जनता की दृष्टि में जनार्दन-तुल्य हो गये थे । लेकिन वे ख्याति को हेय समझते थे और चाहते थे कि लोग उनकी करामात को न जाने । मेरे विचार से हरेक सिद्ध संत एकाध ही करामात करता है । फिर रविदास-जैसे निःस्पृह

*दी निर्गुण स्कूल आव् हिन्दू प्योत्री पृ० ७० ।

भक्त ने तो कम से कम करामातें की होंगी । रविदास ने कम से कम दो चमत्कार जरूर किये होंगे । जिनमें से एक तो मीरा की पीर को बुझाना है और दूसरा प्रस्तर-मूर्ति को तैराना । इनके अतिरिक्त अन्य चमत्कारों की पुष्टि उनकी रचनाओं द्वारा नहीं होती है । उनका पारस-मणि को न छूना सिद्ध करने के लिए जो पद पेश किये जाते हैं वे प्रक्षिप्त हैं और उनके प्रमाणित ग्रन्थ में नहीं मिलते हैं । अन्य पदों से जिन चमत्कारों का भाव निकाला जाता है वे सभी दूर की कल्पनाएँ हैं । उन पदों का वस्तुतः बहुत बड़ा पारमार्थिक, आध्यात्मिक, नैतिक या रहस्यवादी अर्थ है ।

ये पद निम्न हैं :—

१—रामा हो जगजीवन मेरा ।

तू न बिसारि मैं जन तेरा ।

२—पावन जस माधव तेरा, तुम दारुण दुखमोचन मेरा ।

इन पदों के अर्थ तथा कल्पनोत्थापित अन्तर्कथा की असत्यता के लिए पुस्तक का द्वितीय भाग देखिए ।

कतिपय चमत्कार आज भी महात्माओं एवं सिद्धों द्वारा किये गये देखे जाते हैं । पाश्चात्य देशों में भी इन सबका अध्ययन पैरा-साइकालोजी (परामनोविज्ञान) नामक शास्त्र में होता है । मिसमरेज्म, हिपनाॅटिज्म या ऐसे ही अन्य नामों से आजकल जो भाव व्यक्त होता है वही प्राचीन काल में चमत्कार से था । अतएव यह मान लेना कोई अवैज्ञानिक नहीं प्रतीत होता कि रविदास ने कुछ लोगों को अपने हिपनाॅटिज्म के द्वारा जल में मूर्ति को तैरती हुई दिखाया होगा ।

इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं कि स्वयं रविदास ने अन्य संतों के चमत्कारों का वर्णन किया है—

(क) निर्गुन का गुन देखौ आई ।

देही सहित कबीर सिधाई ॥

(ख) भगति हेत भगता के चले ।

अंकमाल ले बीठल मिले ॥

(ग) निमत नामदेव दूध पियाइआ ।

रविदास चमत्कार में विश्वास करते थे । उनके द्वारा एक-दो चमत्कार का किया जाना असम्भव नहीं प्रतीत होता है ।

६—पैराग्य और भक्ति

रविदास जी पूरे सन्त दार्शनिक थे । उनको जीवन से वीतराग था । संसार को देखकर वे आश्चर्य करते थे । संसार क्या है ? कैसे उत्पन्न हुआ ? यहाँ जो दुख है उसकी क्या सत्ता है ? उसका निराकरण कैसे सम्भव है ? जन्म और मृत्यु से कैसे छुटकारा मिल सकता है ? इन सब प्रश्नों पर उन्होंने विचार किया और उनका हल ढूँढा ।

परिवारि बिमुख मोहि लागि । कछु समुझि परत नहि जागि ।
यह भौ बिदेस कलिकाल । अहो मैं आइ पर्यो जमजाल ।
यहीं नहीं, उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने को उदास कहा है । जैसे—

१—अंतर गति राचैं नहीं, बाहर कथैं उदास ।

ते नर जमपुर जाहिगे, सत भाषै रैदास ।

२—मन रैदास उदास ताहि ते, करता क्यों है भाई ।

केवल करता एक सही सिर, सत राम तेहि ठाई ॥

३—रैदास उदास मन भौ, जप न तप गुन ज्ञान ।

भगत जन भवहरन कहिये, ऐसे परम निधान ।

४—मुन्न मँडल में मेरा बासा । ता ते जिव में रहौं उदास ।

५—कहि रविदास उदास दास-मति जनम-मरन भै भागे ।

६—कहि रविदास उदास दास-मति, परिहरि कोपु करहु जीअ दइआ ।

७—रविदास दास उदास तजु, भ्रमु, तप न तपु गुर गिआन ।

भगत जन भैहरन परमानंद करहु निदान ।

८—अनिक जतन निग्रह किये, टारी न हरै भ्रम फास ।

प्रेम भगति नही छूजै, ताते रविदास उदास ॥

वे सदा शून्य-मण्डल में रहते थे अर्थात् उनका मन सदा परम-तत्त्व के चिन्तन में डूबा रहता था । इसीलिये वे शरीर से उदास थे । सांसारिक

कामों में उनका मन नहीं लगता था । “संसार धरम मेरो मन न धीजै ।”
आचार्य शङ्कर ने अद्वैत वेदान्त के विद्यार्थी में जिन चार गुणों का वर्तमान
रहना आवश्यक बतलाया है वे सभी रविदास में थे । (१) नित्यानित्य वस्तु
विवेक (२) इहामुत्रार्थभोगविराग (३) शमदमादिसाधनसंपत् (४) और
मुमुक्षुत्व, ये चारों गुण उनमें पूर्णरूप से थे ।

‘उदास’ शब्द कई बार आने से कुछ लोग रविदास को ‘उदासी’ मान
बैठे हैं । ‘उदासी’ नानकपंथी साधु होते हैं । किन्तु रविदास उदास थे । वे
उदासी नहीं थे । नानक तो उनके पीछे हुये हैं । फिर कहां से वे नानकपंथी
हो सकते हैं ?

‘उदास’ होते हुए भी रविदास गृहस्थ थे । कुछ लोग उनकी स्त्री का
नाम लोणा बताते हैं । पर इसके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता है । लेकिन
इतना स्पष्ट है कि वे विवाहित थे । भक्ति और गार्हस्थ्य का समन्वय उन्होंने
इस प्रकार किया है :—

सत्य सनेह इष्ट अंग लावै, अस्थल अस्थल खेलै ।

जो कछु मिलै आन आखत सौं, सुत दारा सिर मेलै ।

हरिजन हरिहि और न जाने, तजै आन तन त्यागी ।

कह रैदास सोई जन निर्मल, निसि दिन जो अनुरागी ।

मनुष्य सब में हरि को देखे और हरि को छोड़ कर किसी को न जाने ।
अपने पुत्र-कलत्र को भी हरिजन समझे । जो कुछ उसको कमाने से मिले
उससे वह अपने घर का पालन-पोषण करें । रविदास अपना पैतृक उद्योग
करते थे । उससे जो थोड़ी बहुत आय होती थी उसी से उनको संतोष था ।

जैसे उन्होंने अपने को स्थान-स्थान पर उदास कहा है वैसे ही उन्होंने
‘दास’ और ‘बिचारा’ भी कहा है । वे अपने को दास-मति कहते थे । उनकी
भक्ति दास्य-भाव की थी । ‘रैदास दास’ यह पूरा नाम उनके अनेक पदों में
आया है । प्रभु को वे अपना स्वामी या मालिक मानते थे और स्वयं को
खिदमतगार । कभी-कभी वे अपने को दासानुदास भी कहते थे ।

‘विचारा’ का प्रयोग उन्होंने यों किया है :—

१—बापुरो सत रैदास कहै रे ।

२—हम रैदास रामराई को, कह रैदास विचारा ।

३—दरमाँदा दर उवाब न पावै, कह रैदास विचारा ।

इससे ज्ञात होता है कि उनमें दैन्य-भाव अधिक था । वे किसी को दुःख नहीं देते थे और अपने को अत्यन्त दीन समझते थे ।

घमण्ड तो उनमें छू तक नहीं गया था । घमण्ड में आकर लोग पराये का उपदेश नहीं सुनते हैं । इस पर उन्होंने कहा—

आपा पर चीन्हें नहीं रे, पर को उपदेस ।

वे दूसरों के भावों को समझते थे और उनके ठीक उतरने पर मानते थे :-

हम हीये सीखि सीखै हम हिये माड़े ।

वे चींटो की भाँति तुच्छ रहकर भक्ति का आनन्द लेते थे :—

तजि अभिमान मेढि आपा पर, पिपिलक ह्वै चुनि खावै ।

यहां तक कि जब तक मनुष्य में घमण्ड रहता था तब तक वे उसे भक्त ही नहीं मानते थे । भक्ति तो आपा-नाश का दूसरा नाम है ।

१—भगति न तीं जाना, आप को आप बखांना ।

२—आपा खोर भगति होत है ।

दूसरों की निन्दा करने को वे सब से बड़ा पाप मानते थे । तीर्थ करो, व्रत करो, वेद-पुराण सुनो, यज्ञ करो, दान दो; लेकिन यदि निन्दा करते हो तो सब व्यर्थ है । “करै निन्द सम विरथा जाई ।” रविदास ने खूब सोच विचार कर कहा है कि निन्दक बड़ा पापी होता है और अवश्य नरक को जाता है ।

रविदास निष्काम पुरुष थे । उनकी कोई ‘साध’ नहीं थी । यहां तक कि वे भक्ति की भी इच्छा नहीं करते थे क्योंकि भक्ति की इच्छा करने से भी तो मोह आ जाता है ।

भगति चितउँ तो मुँह दुख व्यापही,
मोह चितउँ तो भगति जाई ।
उभय सन्देह मोहि रैन दिन व्यापही ।
दीनदाता करूँ कवन उपाई ।

इससे स्पष्ट है कि वे निर्मोही या निःस्पृह तो थे ही साथ ही एक विचारक भी थे । वे सन्देह और संशय का स्वागत करते थे क्योंकि सभी मनुष्य सन्देह की ग्रन्थि में गुँथा हुआ है । मनुष्य जन्म से ही ऐसा बनाया गया है कि वह पद-पद पर शंका करे । इस शंका को केवल आत्मा या हरि ही दूर कर सकता है ।

संसा सदा हिरदै बसै, हरि बिन कौन हरे अभिमान ।

सेवा उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य था । सन्तों की सेवा में तो वे अपने तन-मन-धन को भी न्यौछावर कर देते थे ।

करूँ डंडवत चरन पखारूँ,
तन-मन-धन उन ऊपरि वारूँ ।

इस प्रकार रविदास का व्यक्तित्व भीतर से बहुत ही उज्ज्वल और बाहर से बहुत ही आकर्षक था । वे एक आदर्श भक्त थे ।

७—भगवत्प्राप्ति

हम रविदास के चमत्कारों पर युक्तितः सन्देह कर सकते हैं । किन्तु हम इस तथ्य पर सन्देह नहीं कर सकते हैं कि उन्होंने भगवान् को पा लिया था ।

धन्ना ने कहा है कि रविदास ने माया को त्याग दिया था और वे साक्षात् मायामुक्त ब्रह्म हो गए थे—

रविदास ढोवंता ढोर नीत तिनहि तिआगी माइया ।

परगट होइआ साधुसंग, हरिदरसनु पाइआ ।

नाभादास कहते हैं कि रविदास ने इसी भौतिक शरीर से परम तत्त्व को उपलब्ध किया था—

भगवत कृपा प्रसाद परमगति इहि तनि पाई ।

दादूपंथी संत रज्जब अली कहते हैं कि रविदास को आदि मिली थी और जिस तरह रविदास को आदि मिली थी उसी तरह जयदेव को भी ।

आदि मिली जयदेव को रैदास समानी ।

इससे स्पष्ट है कि रज्जब के समय में रविदास की ईश्वर-प्राप्ति आदर्श हो गई थी । उसका दृष्टान्त दिया जाने लगा था ।

फिर रविदास स्वयं कहते हैं—

जा कारन मैं दौरौ फिरतो सो अब घट में आई ।

इसका अर्थ है कि रविदास ने अपने शरीर में भगवान् की उपस्थिति का अनुभव किया था । उनका शरीर भगवान् का मन्दिर था; वह बैकुरठ-धाम हो गया था ।

इस प्रकार अन्तर्साक्ष्य तथा बहिर्साक्ष्य के आधार पर रविदास की भगवत्प्राप्ति निर्विवाद है । उन्होंने मानवता की उच्चतम आकांक्षा को तृप्त कर

लिया था। इस रूप में भारत के सभी सन्त रविदास का स्मरण आज तक करते चले आ रहे हैं।

मीरा ने सन्त रविदास को सद्गुरु कहा है। सद्गुरु वह है जो स्वयं भगवान् को प्राप्त करे और औरों को भी भगवान् का साक्षात्कार करा दे। सन्त रविदास ने मीरा-जैसे अन्य भक्तों को भी भगवत्प्राप्ति करायी थी। अतएव वे सच्चे अर्थ में सद्गुरु थे।

८—रविदास का अवमूल्यन और अतिमूल्यन

अवमूल्यन

रविदास का व्यक्तित्व उच्चकोटि का था । उनके माहात्म्य का अनुभव उनके परवर्ती सभी सन्तों ने किया था । फिर भी कुछ संस्कृतज्ञों को उनका प्रभाव अच्छा नहीं लग रहा था । ऐसे लोगों में से एक ने निम्नलिखित व्यंग्य सन्त रविदास के बारे में कहा है—

गता गीता नाशं क्वचिदपि पुराणं व्यपगतम्,
विलीनाः स्मृत्यर्था निगमनिचयो दूरमगमत् ।
इदानीं रैदासप्रभृतिवचनैर् मोक्षपदवी,
तदेवं जानीमो कलियुग तवैवेष महिमा ॥

आजकल गीता नष्ट हो गई है, कहीं-कहीं पुराणों का लोप हो गया है । स्मृतियों के अर्थ लुप्त हो गए और वेद भुला दिए गए हैं । है क्या ? इस समय केवल रैदास प्रभृति संतों के वचनों से ही लोग मोक्षमार्ग पकड़ रहे हैं । यह कलियुग की महिमा है ।

यहां सूक्तिकार ने एक सत्य का उद्घाटन किया है कि इस समय रैदास की वाणी तथा अन्य संतों की बानियाँ मोक्ष दिला रही हैं और प्राचीन धार्मिक साहित्य लुप्त हो गया है । किन्तु उसने इस तथ्य का ठीक मूल्यांकन नहीं किया । उसने इसको कलियुग का प्रभाव बताया ।

वास्तव में उसके मूल्यांकन में जाति-विचार आ गया है और तत्त्व-चिन्ता हट गई है । यदि वह रविदास की जाति का विचार न करता अथवा उनकी जाति को निम्न न मानता तो वह संत रविदास का ऐसा अवमूल्यन न करता । साधु-सन्तों की जाति का विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि उनकी कोई जाति नहीं होती है ।

महाभारत में कहा गया है—

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः ।

तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः ।

अर्थात् जो शूद्र सदा दम, सत्य और धर्म पर खड़ा रहता है वह ब्राह्मण है क्योंकि वृत्त से ही ब्राह्मण को जाना जाता है । इस मानदण्ड के अनुसार संत रविदास ब्राह्मण या ब्रह्मदेत्ता था । अतएव उनका अदमूल्यान नहीं होना चाहिए ।

आज भी बहुत से लोग संत रविदास को केवल चमार भगत कहते हैं । उनको भी संत रविदास का इतिवृत्त तथा प्रभाव ज्ञात नहीं है । उनका मूल्यांकन भी नितांत गलत है । जो लोग उनके व्यक्तित्व और प्रभाव को जानते हैं वे उनके सामने आज भी नतमस्तक हैं । उदाहरण के लिए कविवर पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने लिखा है—

ज्ञान के आकर, मुनीश्वर थे परम

धर्म के ध्वज, हुए उनमें अन्यतम ।

पूज्य अग्रज भक्त कवियों के ! प्रसर

कल्पना की किरण नीरज पर सुधर

पड़ी ज्यों, अंगड़ाइयां लेकर खड़ी

हो गई कविता की आई शुभ घड़ी ।

जाति में देखा सभी ने सींचकर

दृग, तुम्हें श्रद्धा सलिल से सींचकर

शानियां अवरोध की घेरी हुई

बाणियां ज्यों बनी, जब चेरी हुई ।

छुआ पारस भी नहीं तुमने, रहे

धर्म के अभ्यास में अविरल बहे ।

ज्ञान-गंगा में समुज्ज्वल चर्मकार ।

चरण छूकर कर रहा नमस्कार ।

यही संत रविदास का ठीक मूल्यांकन है जिसकी आज वास्तव में आवश्यकता है ।

अतिमूल्यन

सन्त रविदास के कुछ भक्तों ने उन्हें ईश्वर बना दिया है । यह सन्त रविदास का अतिमूल्यन है । यह भी एक दोष है जो वास्तव में संत रविदास के अवमूल्यन की प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ है ।

इस अतिमूल्यन से संत रविदास का महत्त्व घटता है । उनका महत्त्व इस तथ्य से बढ़ जाता है कि उन्होंने अत्यन्त सामाजिक निम्नता से अपने पुरुषार्थ के बल पर उठकर उच्चतम महानता को प्राप्त किया ।

नीचे से प्रभु ऊँच कियो है कह रविदास चमारा ।

सन्त रविदास को भगवान् मान लेने पर उनके पुरुषार्थ, विकास तथा उपलब्धि घट जाते हैं क्योंकि इनका कारण उनका ईश्वर होना हो जाता है । यदि वे मानव हैं तो फिर उनके पुरुषार्थ, विकास तथा उपलब्धि मूल्यवान् हो जाते हैं क्योंकि ये मानव प्रयत्न के परिणाम हैं । ईश्वरीय प्रयत्न का उतना मूल्य नहीं है जितना मानव प्रयत्न का है ।

फिर सन्त रविदास के युग में भक्त का दर्जा भगवान् से भी बड़ा माना जा रहा था । नाभादास ने इस विचार-धारा को लेकर भक्तमाल की रचना की है । स्वयं सन्त रविदास भी सन्त और अनन्त हरि में कोई अन्तर नहीं देखते थे और सन्त को भगवान् से बड़ा मानते थे ।

सन्त रविदास के दास्य तथा विनय-भाव इस बात के अन्य प्रमाण हैं कि वे अपने को ईश्वर या ईश्वर का अवतार नहीं मानते थे ।

अतः सन्त रविदास के दर्शन-धर्म में मानव का ईश्वरीकरण वैसे ही दोष है जैसे मानव का निम्नीकरण ।

सन्त रविदास के बारे में आज सही दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है । यह दृष्टिकोण उनके उचित मूल्यांकन की मांग करता है जिसमें न अवमूल्यन हो और न अतिमूल्यन । अतः सन्त रविदास को एक सन्त-दार्शनिक या महात्मा ही समझना चाहिए ।

६—रविदास का तत्त्वज्ञान

रविदास अद्वैतवेदान्ती हैं। इनके अनुसार सत् एक है और वह ब्रह्म है। नानात्व दर्शन अनमूलक है।

‘आदिहु एक अन्त पुनि सोई, मध्य उमाइजु कैसे ।

अहै एक पै भ्रम से दूजो, कनक अलंकृत जैसे ॥

किंवा

धरम अधरम मोच्छ नहि बंधन, जरा मरन भव नासा ।

दृष्टि अदृष्टि गेय अरु ज्ञाना, एकमेक रैदासा ॥’

अद्वैतानुभूति ज्ञानसाधना की पराकाष्ठा है। यह प्राथमिक ज्ञान नहीं है। जिज्ञासु और ज्ञानी के ज्ञान में अन्तर होता है। अतः एक सत् का ही ज्ञान-साधना में विविध ग्रहण होता है। ऋग्वेद के मनीषियों को भी इसीलिए कहना पड़ा—एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति ।

रविदास को ज्ञान-प्राप्ति में सत् का षड्धा ग्रहण मिलता है—प्रतिमा-चितन, विराट-चितन, निर्गुण-चितन, नाम-चितन, अनाम-चितन और अवोल-चितन। इन्हें ज्ञान-साधना के छः सोपान भी कहा जा सकता है।

१. प्रतिमा-चितन—मूर्ति-पूजा केवल प्रस्तर-प्रतिमा-पूजन ही नहीं, अपितु सत् के किसी भी संकेत पर श्रद्धा-प्रदर्शन है। ज्ञानी के लिए जगत् की कोई भी वस्तु व्यर्थ नहीं है। वह प्रत्येक वस्तु का स्वरूप ग्रहण कर उपयोग करता है। मूर्ति-पूजा का उद्देश्य वस्तु विशेष को आधेय और परम सत् को आधार समझना है अथवा उस में सत् का प्रतिबिम्ब देखना है।

‘अबरन बरन कहै जनि कोई । घट घट व्यापि रह्यो हरि सोई ।’

अतः

मूरति मांहि बसै परमेशुर ।

यही नहीं, परम सत् परमेश्वर का प्रतिबिम्ब अथवा अंग सर्वत्र गोचर होता है ।

थावर जंगम कीट पतंगा, पूरि रह्यो हरि राई ।
सर्वेश्वर सर्वांगी सबगति, करता हरता सोई ॥

मूर्ति-चिन्तन का ही सामान्यीकृत रूप सर्वात्मवाद (Pantheism) है । इस प्रक्रिया की मध्य कड़ी एकेश्वर की साकारोपासना है । इसीलिए रविदास के अन्यान्य पदों में साकारोपासना मिलती है ।

२. विराट्-चिन्तन—जब सभी वस्तुएं क्रमशः सत् की प्रतीक हो सकती हैं, तो एक ही वस्तु को सदा क्यों प्रतीक माना जाय ? जो ज्ञान के अधिकारी हों, कम से कम उन्हें ऊपर उठ कर सभी वस्तुओं पर युगपत् ध्यान करना चाहिए । इसी ध्यान का विषय विराट् पुरुष है ।

कोटि भानु जाकी सोभा रोमै । कहा आरती अगनी होमै ॥
पांच तत्व तिरगुनी माया । जो देखे सो सकल समाया ॥
कह रैदास देखा हम भांही । सकल जोति रोम सम नाहीं ॥

यह है विराट् पुरुष का ध्यान जिसका प्रयोग रविदास प्रायः अपनी आरतियों में करते हैं । इस स्तर पर मूर्ति-पूजा वृथा लगती है । सत् या ब्रह्म ब्रह्मांड से अभिन्न लगता है ।

अविगति नाथ निरंजन देवा । मैं क्या जानूँ तुम्हरी सेवा ॥
बांधूँ न बंधन छाऊँ न छाया । तुम ही सेऊँ निरंजन राया ॥
चरन पताल सीस असमाना । सो ठाकुर कैसे संपुट समाना ॥
सिख सनकादिक अंत न पाये । ब्रह्मा खोजत जनम गंवाये ॥
तोड़ूँ न पाती पूजूँ न देवा । सद्गुरु समावि करूँ हरि सेवा ॥
नख प्रसाद जाके सुरसरि धारा । रोमावली अठारह भारा ॥
चारों वेद जाके सुमिरत सांसा । भगति हेत गावै रैदासा ॥

इस प्रकार विराट् पुरुष का शिर गगन में और पाद पाताल में है । १८ लोक उसके रोएं हैं । उसके नख से जाह्नवी निकली हैं । चारों वेद उसी की श्वासों हैं । शिव-सनकादि भी उसके रूप का अन्त न पा सके । पांचों तत्व और त्रिगुणात्मिका माया उसमें समाए हैं । तब भला उसकी उपासना मण्डप अथवा सम्पुट में कैसे हो सकती है ? वह निरंजन है । गीता के विराट्-पुरुष की भांति रविदास के भी विराट् की कल्पना निराकार नहीं, वरन् साकार है । वह सर्वांगी तथा सर्वशक्तिसम्पन्न है ।

३. निर्गुण-चिन्तन—विराट् पुरुष के चिन्तन के बाद साधक निराकार का चिन्तन करता है । यदि सत् विभु या व्यापक है तो फिर वह सान्त या सीमित कैसे हो सकता है ? अवश्य वह अनन्त है । रविदास कहते हैं—

‘अवरन बरन रूप नहि जाके ।’

और

‘निश्चल निराकार अज अनुपम, निरभय गति गौर्विदा ।

अगम अगोचर अच्छर अतरक, निरगुन अंत अनंदा ॥

सदा अतीत ज्ञानघन वर्जित, निरविकार अविनासी ।

कह रैदास सहज सुन्न सत्, जिवनमुक्त निधि कासी ॥’

विराट् को ही विभु बनाने से निर्गुण का ज्ञान होता है । जब सत् के सभी अंग हैं तब निश्चय ही वह न तो हम-जैसा अंगी है और न उसके हमारे-जैसे अङ्ग हैं । अतः वह हमारे लिए निरंग, निराकार है । वाणी द्वारा साकार का ही उपव्याख्यान होता है । अतः निर्गुण सत् है अतर्क्य, ज्ञान-घन-वर्जित, वाणी से अगम, इन्द्रियों से अगोचर, निश्चल, निराकार, अविनाशी, निर्विकार । सदा अतीत रहना उसका स्वभाव (Self being) है ।

४. नाम-चिन्तन—नाम समन्वयात्मक ज्ञान का सूचक है । सत् नीरूप,

निर्गुण ही नहीं, वरन् साकार विराट् पुरुष भी है । दोनों के समन्वय से जो ज्ञान प्राप्त होता है उसी को नाम कहते हैं, इसे सनत्कुमार ने देवर्षि नारद को समझाया था जिसका उल्लेख छान्दोग्योपनिषद् के सप्तम अध्याय में मिलता है । नाम का अभिप्राय आत्मा है । विना आत्म-ज्ञान के भलाई नहीं है । रविदास कहते हैं—

‘तैं निज नाँव न जानिया भला कहां ते होय ।’

आत्मा ही ब्रह्म है । अतएव सत् या ब्रह्म को जानने का आशय है नाम या आत्मा को जानना ।

हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह किसी शब्द या संकेत द्वारा ही होता है । उसे किसी न किसी नाम से व्यपदेश किया जाता है । अतः नाम-चिन्तन सद्-ज्ञान का मुख्य-सोपान है । नाम निराकार से परे है । इसमें साकारत्व अधिक और निराकारत्व कम है; पर हैं दोनों । यह केवल अनुभूतिजन्य समष्टिगत साकार-निराकार-ज्ञान है । इसे व्यक्त करना समष्टि को व्यष्टि करना है, प्रमा को भ्रांति बनाना है क्योंकि व्यष्टित्व ही भ्रम है । अतः नाम व्यष्टि द्वारा विषय-बद्ध नहीं हो सकता है । यह निर्विषय (Unobjectified) है । सगुण और निर्गुण दोनों इसके पहलू हैं । तुलसीदास जी कहते हैं—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥

मोरें मत बड़ नाम दुहूँ ते । किए जेहि जुग निज बस बूते ॥

रविदास भी कहते हैं—

‘गुन निरगुन कहियत नहि जाके, कहौ तुम बात सयानी’

और

सीत वायु ऊसन नहि सरवेत, काम कुटिल नहि होई ।

जोग न भोग क्रिया नहि जाके, कहौ नाम सत सोई ॥

नाम-तत्त्व की महिमा रविदास, कबीर प्रभृति सन्तों में विशेष है। रविदास के लिए तो 'हरि के नाम बिना भूठे सकल पसारे'—प्रपंच बिना हरि नाम के मिथ्या है। सब कुछ नाम ही नाम है।

‘नाम तेरो आसन नाम तेरो उरसा नाम तेरो केसरि लै छिड़का रे ।

नाम तेरो अमिला नाम तेरो चंदन, घंसि जपै नाम ले तुभ कूंचा रे ॥

नाम तेरो दीपा नाम तेरो बाती, नाम तेरो तैले ले मांहि पसारे ।

नाम तेरे की जोति जगाई, भयो उजियार भवन सगरा रे ॥

सचमुच—

जो जन राम-नाम रंगराते और रंग न सुहैहो’

५. अनाम-चितन—हम ऊपर देख चुके हैं कि सत् का प्रधान स्वरूप सदा-अतीतत्व है। सत् सब कुछ होते हुये भी 'निरलेपी', असांग है। सदातीतत्व के कारण वह द्वंद्वतीत अर्थात् निद्वन्द्व है। नाम द्वंद्व की एक कोटि है। दूसरी है अनाम। अतः यदि सत् सर्वगत है तो वह नामानाम की दूसरी कोटि अनाम भी है। नाम नामों का होता है। नामी का नाम से बोध अवश्य होता है, पर है वह नाम से पृथक् ही। इसलिए नामी को ही अनाम या विनाम कहते हैं। अथवा जिस नामी के अनंत नाम हैं उसका वस्तुतः कोई नाम ही नहीं है क्योंकि आनंत्यदोष के कारण नाम का महत्व ही लुप्त हो जाता है। एतदर्थ नामी को अनाम कहना ही युक्तियुक्त है। वस्तुतः अनाम का स्वरूप सहज भाव (simple being) है। रविदास कहते हैं—

जोइ जोइ पूजिय सोइ सोइ कांची, सहज भाव सत होई ।

कह रेदास मैं ताहि की पूजूं, जाके ठावं नावं नहि होई ॥

सत् न तो ठावं (space or form) है और न नावं (Name) है। वह देश-काल-ज्ञान के परे है। नेति नेति द्वारा ही उसका वर्णन हो सकता है, क्योंकि जिसका भी किसी नाम-रूप द्वारा वर्णन होता है वह नामरूपात्मिका

माया के अन्तर्गत होकर मिथ्या होता है । सत् को तर्कतः केवल अद्वैत, अनंत, अनाम, अरूप, बिनाम आदि प्रतिपेक्षों से ही पुकारा जा सकता है । अनाम-ज्ञान ब्रैडले के शब्दों में असंग-ज्ञान (unrelated knowledge or knowlsdge of the unrelated) है । इस स्तर पर मनः-शान्ति और आनंद नहीं मिलता । फिर द्वन्द्वातीत होने के कारण सत् न तो नाम है और न अनाम । वह नामानाम के द्वन्द्व से मुक्त है । अतः ज्ञान-पिपासु को आगे बढ़ना पड़ता है ।

६. अबोल-वित्तन—रजिदान का अन्त में निरूपित सिद्धान्त के आधार पर कहना है—‘भरम नावं विनावं’, पर ‘जों लों सांच से नहि पहिचान’, सत्य की प्रत्यभिज्ञा होने पर नामानाम, सगुण-निर्गुण प्रभृति सभी द्वन्द्व द्वन्द्वातीत सत् के अंगभूत विदित होते हैं । वस्तुतः न तो-नतो-न्याय का विधायक रूप दोनों तथा-और-कुछ-न्याय है । सत् न तो नाम है न अनाम, क्योंकि वह नामानाम दोनों तथा और कुछ है । वह शब्दातीत है । ‘जस हरि कहिए तस हरि नहि, है अस-जस-कहु-तैसा (some how) ही उसका स्वरूप है जो ब्रैडले, अफलातून आदि को भी जान्य है । शब्दपिंजर में पड़कर अबोलत्व नष्ट हो जाता है ।

‘बोलत बोलत बढ़ै वियाधी बोल अबोलै जाई ।

बोलै बोल अबोल कोय करै, बोल बोल को खाई ॥

यह अबोल तत्त्व उपशान्तोऽयमात्मा—इस उपनिषद्-सिद्धांत का हिन्दी रूपान्तर है जिसके अनुसार परम तत्त्व का वाणी द्वारा प्रवचन नहीं हो सकता । यहां वाणी से अभिप्राय वैखरी वाणी से है । परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी चार वाणियां हैं । परा आद्या वाणी है, वैखरी वह वाणी है जिसका मनुष्य विचार-विनिमय में प्रयोग करते हैं । परा वाणी साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है ।

उससे सत् का ज्ञान वैसे होता है जैसे दीपक को अपने प्रकाश का तथा आत्मा को अपने अस्तित्व का ।

आशापाशमुक्त, दम्भदर्पकुटुंकरहित, समन्वयोपासक, द्वन्द्वन्यायविज्ञ नैष्ठिक ज्ञानी इस सत् को आनन्दस्वरूप समझकर आनन्द भोगता रहता है । रविदास कहते हैं—

सह की सार सुहागिनी जानै, तन-मन देय अंतर नहि आनै ॥

आन सुनाय और नहि भाषै, राम रसायन रसना चाखै ॥

सारांशतः उपर्युक्त छः सोपानों को निम्न तक-वाक्यों में यों व्यक्त किया जा सकता है ।

(क) मूर्ति ब्रह्म है ।

(ख) विराट् पुरुष ब्रह्म है ।

(ग) निर्गुण ब्रह्म है ।

(घ) नाम ब्रह्म है ।

(ङ) अनाम ब्रह्म है ।

(च) अबोल ब्रह्म है ।

ब्रह्म सत् एक ही वस्तु है । मूर्ति सत् का व्यष्टिगत विशिष्ट स्वरूप है । विराट् पुरुष अथवा सगुण ब्रह्म समष्टिगत रूप है । यहां तक ज्ञान में रूप का प्राबल्य रहता है । व्यष्टि रूप प्रत्यक्ष है । समष्टि रूप उस पर आधृत अनुमेय तथा प्रातिभ ज्ञानगम्य है । सदातीतत्व के कारण रूप का सत् में निषेध किया जाता है जिससे नीरूप निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान होता है । विराट् सगुण और यह निर्गुण, दोनों मिलकर सत् को द्वन्द्व में बांधने का प्रयास करते हैं । पर सत् तो निद्वन्द्व है । अतः सगुण-निर्गुण से बरे नाम का ज्ञान होता है । नाम भी द्वन्द्व की एक कोटि है । दूसरी कोटि है अनाम । अतः सत् को अनाम कहकर फिर सामानाम-मुक्त कहकर अबोल में ज्ञान का पर्यवसान किया जाता है । इस प्रकार

यह समग्र प्रक्रिया प्रत्यक्ष, अनुमान तथा प्रातिभ ज्ञान पर आधारित है । सर्वगत और सर्वातीत—इन दोनों स्वरूपों का अवलम्बन लेकर ज्ञानी मूर्ति से अबोल तक का ज्ञान प्राप्त करता है ।

स्पष्ट है कि रविदास बहुत बड़े तार्किक ज्ञानी थे । नाभादास ने कहा भी है—संदेह ग्रंथि-खण्डन-निपुण वाणि विमल रैदास की । रविदास न तो सगुणोपासक थे और न निर्गुणोपासक । न तो उन्होंने मूर्ति-पूजा की सदा निन्दा की और न साधना । इतने पर भी जो उन्हें 'निरगुनिया' अथवा 'सगुणोपासक' कहे, उसे क्या कहा जाय ?

१०—कबीर और रविदास में अन्तर

प्रायः कबीरदास और रविदास दोनों एक ही मत के विचारक तथा प्रचारक माने जाते हैं। दोनों को रामानन्द का शिष्य कहा जाता है। दोनों ज्ञानी तथा निर्गुणोपासक समझे जाते हैं। यही नहीं, कभी कबीर रविदासी कहे जाते हैं तो कभी रविदास कबीरपंथी। दोनों के रहस्यवाद, भक्ति, अध्यात्मशास्त्र तथा धर्मशास्त्र में तो तनिक-सा भी वैषम्य नहीं दिखलाया जाता। लगता है कि दोनों का एक ही व्यक्तित्व है, एक ही प्राण है और एक ही जीवन है। यदि कुछ लोग दोनों में वैषम्य भी दिखलाते हैं तो अन्त में वे भी दोनों को एक चने की दो दालें समझ लेते हैं या एक ही थैली के चट्टे-बट्टे मान लेते हैं। किन्तु दोनों का आद्योपान्त गम्भीर अध्ययन करने पर पता चलता है कि इनमें समताओं से अधिक विषमताएँ हैं। समताएँ यदा-कदा औपचारिक हैं। विषमताएँ तो अग्र से लेकर इति तक हैं; क से लेकर ह तक हैं और ये ही दोनों की प्रधान आत्माएँ हैं। इनमें से कतिपय पर कुछ ख्यातनामा विद्वानों का भी अवधान गया है।

(१) श्री ब्रिज ने अपनी पुस्तक 'दो चमार्न' में लिखा है कि रविदास की धर्म-प्रास्था कबीर की धर्म-प्रास्था से बड़ी थी। कारण, रविदास ने अपने गुरु की सामान्य शिक्षाओं का पालन किया और कबीर ने उल्लंघन ! यहाँ ब्रिज सहोदय की सुझाव उतनी ही सराहनीय है जितनी कि उनकी युक्ति दयनीय। रविदास ने किसी लौकिक गुरु की शिक्षा का अनुसरण नहीं किया। रामानन्द उनके गुरु न थे। कबीर भी रामानन्द के शिष्य ही नहीं माने जाते ! और रविदास तो इतने बुद्धिवादी तथा व्यक्तिवादी सन्त थे कि उनको किसी की शिक्षा का अक्षरशः पालन करना असम्भव ही है। वे किसी तथाकथित धर्म के भी तो अनुयायी नहीं थे। वे अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर ही आरुढ़ रहते थे और उसी को धर्म मानते थे। तथापि वे निस्सन्देह कबीर से अधिक आस्थावान् थे। इसका अर्थ है कि वे कबीर से आत्म-विश्वास, श्रद्धा-भक्ति तथा तर्क में दृढ़तर थे।

(२) डॉ० सुरेन्द्रनाथ दास-गुप्त ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू मिस्टिसिज्म' में कहा है कि रविदास में कबीर-जैसी सुधार की लगन न थी । अपने समय के प्रचलित अंधविश्वासों, यज्ञों तथा अन्य धार्मिक कृत्य-कलापों के विरुद्ध कबीर ने आन्दोलन छेड़ा और हिन्दुओं, मुसलमानों तथा योगियों की कड़ी आलोचना की । इसके विपरीत रविदास ने निन्दा तथा ध्वंसात्मक आलोचना को सबसे घोर पाप माना । उन्होंने भी कबीर की भाँति राम और करीम की, वेद और कुरान की, एकता देखी और बाह्य आडम्बरों को व्यर्थ बतलाया । पर उन्होंने कभी भी वेद, पुराण, कुरान, हिन्दुओं-मुसलमानों और योगियों की निन्दा न की । लगता है कि उनके अधोलिखित पद कबीर जैसे परमतद्धिद्रान्वेपियों को ही सम्बोधित किये गये हैं :—

(क) आपा पर चीन्हें नहीं रे और को उपदेश ।

(ख) जे ओहु अठसठि तीरथ न्हावै ।

जे ओहु दुआदस सिल पुजावै ।

जे ओहु कूप तटा देवावै ।

करै निन्द सब विरथा जावै ॥१॥

साधका निन्दकु कैसे तरे ।

सरधा जानौ नरक ही परे ॥ टेक

जे ओहु ग्रहन करै कुलखेति ।

अरपै नारि सीगारि समेति ।

सगली स्त्रिमित स्रवनी सुनै ।

करै निन्द कबनै नहि गुनै ॥२॥

जे ओहु अनिक प्रसाद करावै ।

भूमि दान सोभा मंडीप पावै ।

अपना बिगाड़ि विराना साढै ।

करै निन्द बहु जोनी होढै ॥३॥

निन्दा कहा करहु संसारा ।
 निदक का परगटि पाहारा ।
 निदकु सोधि सोधि बीचारिआ ।
 कहु रविदास पापी नरक सिधारिआ ॥४॥

(ग) कोई सुमार न देखूँ, ये सब उपल चोभा ।
 जाको जेता प्रकास, ताको तेति ही सोभा ।
 हम हिये सीखि सीखै, हम हिये माड़े
 थोरे ही इतराइ चले पतिसाही छाँड़े ॥
 अति ही आतुर वह काची ही तोड़े रे
 बूड़े जल पैसे नहीं, पड़े रे खोरे ॥

कबीर जब वेदों और कुरान की निन्दा करते हैं, हिन्दुओं, मुसलमानों और योगियों को गाली देते हैं, तो सचमुच वे गहरे पानी में गोते नहीं लगाते, ऊपर ही थोड़े पानी में तैरते हैं । वे अत्यन्त आतुर रहते हैं, केवल कच्ची बातों को ही देख पाते हैं, इसी में वे अदराने लगते हैं, ज्ञान छाँटने लगते हैं और बाह्य आडम्बर दिखाते हैं । पर ये सब ऊपरी बनावट हैं । इसका कोई मूल्य नहीं । रविदास ऐसा नहीं करते । वे दूसरों के मत-सागर में डूबते हैं, उनकी शिक्षाएँ ग्रहण करते हैं, सबको श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, निन्दा से कोसों दूर रहते हैं । अतः वे कबीर के विपरीत वेदों और कुरान में अपनी ही अनुभूतियों को पाते हैं । यदि कबीर ने भी आतुरता दूर कर गम्भीरता से विचार किया होता तो वे भी देखते कि वेदों में उनके ही मत की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है । जिस सत् के पीछे वे पागल थे उसे ही वेद के ऋषिओं ने भी बहुत पहले व्यक्त किया था । एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति । अतः यदि कबीर रविदास-जैसे गम्भीर गुणग्राही तथा धीर विचारक होते तो वे भी कोई पृथक् धर्म न चलाते, अपनी गर्वोक्तियाँ न कहते और रविदास की ही भाँति हिन्दू धर्म की सनातन समृद्धि को ही अपने अनुभवों से सम्पन्न करते । गम्भीर निर्णय देने की योग्यता तथा दूसरों के विचारों को परखने की शक्ति रविदास

को महान् दार्शनिक बनाती है । इन दोनों का अभाव कबीर के दर्शन तथा व्यक्तित्व का प्रधान दोष है ।

(३) नाभादास ने भी अपने भक्तमाल में कबीरदास और रविदास के पार्थक्य को खूब समझा है । रविदास के विषय में वे कहते हैं :—

‘संदेह ग्रन्थि खण्डन निपुन, बानि विमल रैदास की ।
सदाचार श्रुति शास्त्र वचन अविरुद्ध उचार्यो ।
नीर-खीर विवरन परम हंसन उर धार्यो ।’

कबीर के विषय में भी उनकी उक्ति है :—

कबीर कानि राखि नहीं, वर्णाश्रम षडदर्शनी ।
भक्तिविमुख जो धर्म सो अधर्म करि गायो
योग यज्ञ व्रतदान भजन बिन तुच्छ दिखायो
हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी सबदी साखी
पक्षपात नहि वचन सबहि को हेत की भाषी ॥’

इन दोनों पदों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि रविदास और कबीरदास को कुछ समान दृष्टिकोणों से देखा गया है । पहला दृष्टिकोण वर्ण-आश्रम, षडदर्शन तथा वेद का है । रविदास ने सदाचार अर्थात् वर्ण और आश्रम की व्यवस्था श्रुति, या वेद तथा शास्त्र अर्थात् षडदर्शनों का विरोध नहीं किया । उन्होंने अपना मत इन्हीं से निकाला । अतः रविदास वेदनिन्दक नहीं थे । वे वेदानुयायी हिन्दू थे । नास्तिको वेदनिन्दकः । कबीर ने वेदों, वर्णाश्रम तथा ६ दर्शनों की मर्यादा नहीं रखी । अतः वे नास्तिक थे । रविदास आस्तिक थे । कबीर ने श्रुतियों और शास्त्रों को प्रमाण न मानकर अपनी रमैनी, साखी आदि को प्रमाण माना । रविदास ने श्रुति-प्रमाण को सभी हिन्दू दर्शनों की भांति माना ।

दूसरा दृष्टिकोण मनीषा का है। रविदास मनीषी थे। उनकी विमल वाणी संदेह-ग्रन्थियों को काट देती थी। विद्वान् ब्राह्मण भी उनसे लाभान्वित थे। अतः वे उनको प्रणाम करते थे। कबीर इतने बड़े ज्ञानी न थे। उनकी ऊबड़-खाबड़ वाणी जनसाधारण के लिए थी, न कि विद्वानों के लिए। इस भाँति रविदास का दर्शन आस्तिक या हिन्दू है। कारण, वेदों का प्रामाण्य उसे मान्य है। पर कबीर का दर्शन चाार्क, बौद्ध तथा जैन मत की भाँति नास्तिक है क्योंकि उसमें वेदों को प्रमाण नहीं माना गया। इस प्रकार कबीर और रविदास में महान् अन्तर है।

(४) रविदास और कबीरदास के अनुयायियों ने भी दोनों में महान् अन्तर खोज रक्खा है। डॉ० रामकुमार वर्मा की सत्कृपा से इन पंक्तियों के लेखक को उनके पास सुरक्षित “रैदास अरु कबीर संवाद” नामक एक कबीरपन्थी हस्तलिखित ग्रन्थ देखने को मिला, जो प्रस्तुत प्रसंग में उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ में कबीर और रविदास ब्रह्म के विषय में बहस करते हैं। कबीर का कथन है कि ब्रह्म निराकर और निर्गुण हैं। रविदास तर्क करते हैं कि ब्रह्म सगुण और साकार है। दोनों में खूब-विवाद होता है। अन्त में रविदास हार जाते हैं और कबीर की शिष्यता स्वीकार करते हैं। इस ग्रन्थ में यद्यपि अनेक ऐतिहासिक दूषण हैं तथापि इसके लेखक ने कबीर और रविदास के ब्रह्मविषयक भेद को खूब समझा था।

इस संवाद का उत्तर रविदासी ग्रन्थ ‘रैदास रामायण’ में दिया गया है। यहाँ भी विवाद का विषय वही है। रविदास ब्रह्म को सगुण सिद्ध करते हैं तो कबीर निर्गुण। पर यहाँ कबीर हारते हैं और रविदास के शिष्य बनते हैं। रविदास कबीर की मूर्खता पर हँसते हैं और उसे अपना गुह्य-ज्ञान बतलाते हैं। इस ग्रन्थ की भी प्रामाणिकता ‘संवाद’ की भाँति संदिग्ध है। पर इसके भी लेखक ने रविदास को सगुण ब्रह्मोपासक और कबीर को निर्गुण ब्रह्मोपासक मानकर अपनी सूक्ष्म बुद्धि का परिचय दिया है।

जातिगत भेद

मनुष्य के स्वभाव तथा विकास पर जाति, धर्म, समाज तथा वातावरण का प्रचुर प्रभाव पड़ता है। जातिगत, धर्मगत, वंशगत तथा समाजगत वैषम्यों के कारण मनुष्यों की बुद्धि तथा हृदय में भी वैषम्य हो जाता है। रविदास और कबीर में जो विषमताएँ हैं उनका प्रधान कारण यही तथ्य है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की गवेषणा के अनुसार कबीर जिस जाति में उत्पन्न हुए थे वह ब्राह्मण-श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करती थी। वह वयनजीवी थी। हिन्दू-समाज की दृष्टि में वह नीच थी। उस जाति के लोग आश्रम-भ्रष्ट घरबारी योगी थे और नाथ-पन्थ को मानते थे। मुसलमानों के आने के बाद वे लोग शनैः-शनैः मुसलमान हो रहे थे। उनमें निराकरोपासना प्रचलित थी। वे लोग अवतारवाद तथा वर्णाश्रमधर्म के विरोधी थे। यद्यपि कबीर नाथ-पन्थी योगमत के अनुयायी नहीं थे तथापि ऐसे कुल में पालन-पोषण होने के कारण उक्त योगमत का कुछ न कुछ प्रभाव उनकी युक्तियों और तर्क-शैली में रह ही गया।

रविदास के जीवनचरित को देखने से ज्ञात होता है कि ये काशी में चमार-जाति में उत्पन्न हुए थे। यह जाति हिन्दू थी। इसमें अवतारवाद, ब्राह्मण-श्रेष्ठता तथा वर्णाश्रम-धर्म के अन्य सिद्धान्त मान्य थे। मूर्तिपूजा भी इसमें प्रचलित थी। वेद और शास्त्र इसे स्वीकृत थे। इस जाति के लोगों को भी नीच समझा जाता था। उनका पेशा मरे हुए जानवरों को ढोना तथा जूते सीना था। यह भी नीच कर्म माना जाता था। पर रविदास को नीच कुल में उत्पन्न होने के कारण अपमान नहीं सहना पड़ा था। ब्राह्मण भी इन्हें प्रणाम करते थे। बेचारे कबीर को यह सम्मान कभी न मिला।

कबीर के जातिवाले न तो हिन्दू थे न मुसलमान। वे पथभ्रष्ट घरबारी योगी थे। पर रविदास के जातिवाले सच्चे हिन्दू थे। वे कबीर के जातिवालों की भाँति मुसलमान नहीं हो रहे थे। उनमें हिन्दू-धर्म की सभी प्रथाएँ प्रचलित

थीं । इन सबका प्रभाव रविदास पर पड़ना अवश्यम्भावी था । अतः यद्यपि रविदास तत्कालीन हिन्दू-धर्म के अन्ध अनुयायी नहीं थे, तथापि वे वैदिक तथा दार्शनिक हिन्दुत्व को मानते थे और उसका तथा पौराणिक हिन्दुत्व का भी प्रभाव उनकी रचना, युक्ति तथा तर्कशैली पर काफी पड़ा है । वे हठयोग तथा नाथ-पन्थ के प्रभाव से उसी प्रकार सर्वथा वर्चित रहे जिस प्रकार कबीर अवतारवाद तथा मूर्तिपूजा से ।

रहस्यवाद में वैषम्य

रहस्यवाद के परिशोध, अबोध तथा एकत्व-लाभ—ये तीन सोपान हैं । परिशोध में साधक किसी न किसी साधना से अपने शरीर, इन्द्रिय, मन, हृदय और चित्त को शुद्ध तथा पवित्र करता है । कबीर हठयोग की क्रियाओं से अपने को शुद्ध करते हैं तो रविदास मूर्तिपूजा और सगुण-भक्ति से । अबोध के सोपान पर तो दोनों का अन्तर बिलकुल व्यक्त हो जाता है । कबीर नाना प्रकार के दृश्य देखते हैं, संगीत सुनते हैं, रस पीते हैं, गन्ध सूँघते हैं और स्पर्श करते हैं । पर रविदास कुछ भी नहीं करते । उन्हें अनहद नाद नहीं सुनाई पड़ता, कहीं से गिरता हुआ रस स्वाद में नहीं आता, कोई गंध या स्पर्श इन्द्रियगोचर नहीं होता, अलौकिक दृश्य नहीं दिखलाई पड़ते । एकत्व-लाभ में भी कबीर को जो आनन्द मिलता है, वह रविदास के आनन्द से भिन्न है । कबीर शोर-गुल मचाकर आनन्द लूटते हैं तो रविदास चुपचाप । कबीर को स्त्री की भाँति परिरम्भ में आनन्द मिलता है तो रविदास को सेवक की भाँति शुश्रूषा में ।

परिवारतः या जन्मतः कबीर पर कुछ मुसलमानी प्रभाव पड़े थे । वे सूफियों की भाँति कभी अनेक लोकों को देखते हैं और उनको पार कर आत्मलाभ प्राप्त करते हैं, तो कभी हठयोगियों की भाँति कुंडलिनी को जगाकर सहस्रचक्र कमल में ले जाकर उसे अमृत झिलाते हैं । सूफ़ी मत और हठयोग दोनों रविदास को अमान्य हैं; यद्यपि कभी-कभी वे अपनी अनुभूतियों की इन रहस्यवादियों के अनुभवों से तुलना करते दीख पड़ते हैं । इस तुलना का उद्देश्य दूसरे

के मत को समझकर अपने ही जैसा मानना है या अपने और दूसरों के मत में समता अथवा एकता देखना है । पर यदि कबीर सूफीमत और हठयोग की क्रियाओं से प्रभावित दीख पड़ते हैं तो रविदास उपनिषद् के ज्ञान-मार्ग से । इस दिशा में भी रविदास कबीर के प्रतिकूल वेदोपनिषद् के मार्ग पर चलने वाले हैं ।

भक्ति में भेद

कबीर की भक्ति कान्ता-भक्ति है, रविदास की दास-भक्ति । कबीर अपने को 'राम की बहुरिया' मानते हैं । रविदास अपने को उसका 'दास' घोषित करते हैं । नारद ने भक्तिसूत्र में इन दोनों भक्ति-प्रकारों को एक ही भक्ति माना है । पर यह उपेय की दृष्टि से है । उपाय की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त भेद हैं । कान्ता अपने प्रियतम से रमण करना चाहती है । दास तो केवल स्वामी में ही रुचि रखता है; कान्ता की भाँति उसका कोई स्वाद नहीं है । कान्ता-भक्ति में भक्त अपने हृदय की पीर अधिक व्यक्त करता है । कभी-कभी इस अभिव्यक्ति में और शृंगाररस की उक्तियों में बहुत कम अन्तर रह जाता है । अतः कान्ता-भक्ति प्रायः शृंगारिक हो जाती है । पर दास-भक्ति में शृंगार छू तक नहीं जाता ।

कबीर और रविदास दोनों ब्रह्म को सगुण और निर्गुण से परे बतलाते हैं । पर कबीर न-जाने क्यों उस सगुण-निर्गुणातीत ब्रह्म से नीचे निर्गुण ब्रह्म पर उतर आते हैं । अतएव उनकी भक्ति निर्गुण हो जाती है । रविदास उसी सगुण-निर्गुणातीत ब्रह्म पर विचरते हैं । उसे वे 'नाम' कहते हैं । अतएव उनकी भक्ति सगुण से आरम्भ होकर निर्गुण को पार करती हुई नाम तक जाती है । सगुण-भक्ति और निर्गुण-भक्ति दोनों का समन्वय नाम-भक्ति में होता है । यह नाम-भक्ति रविदास में ही नहीं किन्तु तुलसीदास आदि सन्तों में भी पाई जाती है । रविदास के समय में नाम-भक्ति के निर्गुण-पक्ष पर ही अधिक जोर दिया जाता था । यही कारण है कि रविदास ने इसके सगुण

पक्ष पर भी अधिक जोर दिया । यह भक्ति उतनी ही निर्गुण है जितनी सगुण, पर वस्तुतः यह दोनों से पृथक् एक तीसरी ही भक्ति है ।

रविदास अभिमान के नाश होने पर ही भक्ति को संभव मानते हैं । 'आपा खोये भगति होत है ।' इससे ज्ञात होता है कि रविदास अन्तर्मुखी थे । कबीर इसके विपरीत बहिर्मुखी थे । वे धूमधूमकर बतलाया करते थे कि मैंने ब्रह्म का साक्षात्कार किया है । रविदास इसे अच्छा नहीं समझते थे । इसमें भक्ति खुल जाती है । इसे छिपाकर रखने की आवश्यकता है । इसका स्वाद शान्त होकर लेना चाहिए ।

पं० परशुराम चतुर्वेदी का कथन नितान्त समीचीन है कि कबीर में नवधा भक्ति का अभाव है । रविदास नवधा भक्ति करते थे । उन्होंने कहा है—“हम जानी प्रेम, प्रेम रस जाने, नौ विधि भगती कराई ।” नवधा भक्ति में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन हैं । अन्तिम कबीर की भी भक्ति है । वैसे सामान्य अर्थ लेने पर कबीर में भी श्रवण, कीर्तन, दास्य और स्मरण भक्तियाँ मिल जायँगी । पर पादसेवन, अर्चन, वन्दन तथा सख्य भक्तियाँ कबीर में कभी न मिलेंगी ।

रविदास का कहना है कि ईश्वर भक्त को मोह-माया के पाश से बाँधता है । पर भक्त ईश्वर को प्रेम के बन्धन से बाँधता है । इस पारस्परिक बन्धन में भक्त तो माया से छूट जाता है । पर भगवान् भक्त के प्रेम-बन्धन से नहीं छूट पाता । इस पर भक्त भगवान् को प्रेम-बन्धन से छूटने की मधुर चुनौती देता है :—

‘तैं हमें बाँधे मोह फाँसी से, हम तोको प्रेम-जैवझिया बाँधे ।

अपने छूटन को 'जतनै' करहु, हम छूटे तुम आराधे ।’

इस प्रसंग में कबीर का भी मत उल्लेखनीय है । कबीर कहते हैं कि ईश्वर

भक्त को प्रेम के बन्धन में भी बाँधता है । भक्त उधर ही जा सकता है जिधर उसका स्वामी खींचकर ले जाय ।

‘गले राम के जेवड़ी, जित खींचे तित जाऊँ ।’

इन रूपकों के अन्तराल में भक्ति का एक आधारभूत सिद्धान्त छिपा है । कबीर के मत से ईश्वर या ब्रह्म को भक्त के प्रेम का उत्तर देना पड़ता है । यदि भक्त भगवान् से प्रेम करता है तो भगवान् भी भक्त से प्रेम करता है । दोनों एक दूसरे को प्रेम के बन्धन से बाँधते हैं । कबीर को प्रेम-भक्ति में ईश्वर के उत्तरभूत अनहदनाद तथा पीयूषस्राव मिलते हैं । इस प्रकार कबीर की भक्ति में दो गति हैं । प्रथम गति भक्त का ईश्वर के लिए आत्मसमर्पण कर देना है । दूसरी गति पहली के उत्तर के रूप में ईश्वर का भक्त के लिए आत्मनिवेदन है । यह द्विधागति रविदास की भक्ति में नहीं है । यहाँ केवल भक्त की ओर से आत्मसमर्पण है । ईश्वर की ओर से आत्मसमर्पण नहीं है अर्थात् रविदास को अपनी भक्ति के उत्तर में ईश्वर से कुछ नहीं मिलता है । फिर भी भक्त ईश्वर की ओर सदैव उन्मुख रहता है । यह मानवीय स्तर पर तार्किक भक्ति है । इसमें रहस्यवाद छू तक नहीं गया है । इसके विपरीत कबीर की भक्ति साधारण मानव के स्तर के ऊपर की है । वहाँ तर्क की हत्या हो जाती है । ईश्वर की ओर से भक्त को कुछ मिलने लगता है । यह विशुद्ध रहस्यवाद है जिसका समर्थन तर्क कदापि नहीं कर सकता । इससे स्पष्ट है कि यदि रहस्यवाद में कबीर रविदास से आगे बड़े हैं तो युक्तियुक्त दर्शन में रविदास भी कबीर से आगे बड़े हैं । कबीर-सा भक्त ईश्वरीय हो जाता है, उसका मानव व्यक्तित्व तथा वैयक्तिक स्वातंत्र्य ईश्वरीय स्वातंत्र्य में विलीन हो जाता है । जिधर ईश्वर रहता है उधर ही वह जाता है । पर रविदास-सा भक्त सदा मानव व्यक्तित्व तथा वैयक्तिक स्वातंत्र्य से सम्पन्न रहता है । ईश्वर भी उसी पर निर्भर है । वह जहाँ चाहे ईश्वर को ले जाय । ये दोनों महान् स्थितियाँ हैं । यदि पहली एक अर्थ में श्रेष्ठ है तो दूसरी दूसरे में ।

तत्त्वज्ञान में वैषम्य

रविदास और कबीर दोनों के अनुसार सत् एक है । उसका स्वरूप भी कभी-कभी दोनों द्वारा एक ही माना जाता है । पर सर्वांगीण विचार करने पर ज्ञात होता है कि कबीर समुच्चयवादी हैं तो रविदास विशुद्ध अद्वैती । डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना ठीक ही है कि कबीर में एकेश्वरवाद, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, भेदाभेद तथा अन्य अनेक अवान्तर मतों की खिचड़ी है । उनका यदि कोई अपना दर्शन है तो वह रहस्यवाद है । इसके विपरीत रविदास में मतों की खिचड़ी नहीं है । वे शांकर अद्वैती हैं । उनका ब्रह्म सदसत् से परे नाम है । नाम से भी परे वह अनिवर्चनीयता तक जाता है । उसका लक्षण सदातीतत्व है । किन्तु है वह बिल्कुल युक्तिग्राह्य और ज्ञानगम्य । तर्क से भी उसकी अवगति हो सकती है । अबाध के सिद्धान्त का कभी खण्डन नहीं होता । पर कबीर के लिए अबाध व्यर्थ है । उनके लिए एक ही वस्तु युगपत् अणु और दीर्घ हो सकती है । रविदास का सत् उपनिषदों में सुना गया है । पर कबीर का सत् अश्रुतपूर्व और केवल उन्हीं का अपना है ।

भ्रम, संसार और जीव के विषय में भी रविदास शांकर मत के अनुयायी हैं । संसार बिल्कुल भ्रम या इन्द्रजाल है । यह व्यर्थ है । सार केवल ब्रह्म है । जीव और ब्रह्म में, संत और अनन्त में, कोई भेद नहीं है । “संत अनंतहि अन्तरु नाहीं ।” वही एकमात्र सत् है । संसार को बिल्कुल निःसार और व्यर्थ सिद्ध करनेवाली कबीर की युक्तियाँ रविदास की बानियों से कम और कमजोर हैं । अतः ज्ञात होता है कि कबीर जगत् की निःसारता में उतनी रुचि नहीं दिखलाते थे जितनी रविदास । जीवात्मा और परमात्मा या भक्त और भगवान् के सम्बन्ध पर जितना प्रकाश रविदास डालते हैं उतना कबीर नहीं । कबीर अपने में ब्रह्मस्वरूप अधिक देते हैं तो रविदास अपने और ब्रह्म में भेद ही नहीं पाते । कबीर की दृष्टि ब्रह्म पर है तो रविदास की दोनों की एकता पर ।

धर्मशास्त्र में भेद

कबीर ने अन्य धर्मों का खण्डन किया और अपने मत की स्थापना की । उनके नाम से आज कबीरपंथ खड़ा है । रविदास ने किसी नये धर्म की स्थापना नहीं की । उन्होंने केवल अपने व्यक्तिगत धर्म पर ही जोर दिया जो ज्ञानी हिन्दुओं की शाश्वत विशेषता रही है । अनेक चमार कालान्तर में कबीरपंथी तथा सिक्ख हो गये । पर अब भी ऐसे बहुत से चमार-बन्धु हैं जो विशुद्ध हिन्दू हैं । ये अपने को रविदासी कहते हैं । इसका अभिप्राय यह नहीं कि उनका भी कबीरपंथ या सिक्खमत-जैसा रविदास-सम्प्रदाय है । रविदास-सम्प्रदाय सदा हिन्दू-धर्म के अन्तर्गत रहा है । नाभादास एक रैदासी विठ्ठलदास का उल्लेख करते हैं । पर कहीं रैदास-सम्प्रदाय के धार्मिक ग्रन्थ देखे नहीं जाते । यह सम्प्रदाय नहीं है । केवल ज्ञानी चमार बन्धुओं का रविदास के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन है । इस श्रद्धा-प्रदर्शन के पीछे कबीरपंथ तथा सिक्खमत आदि सम्प्रदायों की अवहेलना तो छिपी है, साथ ही सनातन हिन्दू-धर्म की मान्यता भी विद्यमान है । इस प्रकार रविदास ने हिन्दू-धर्म के अन्दर रहकर ही अपनी जाति को सुधारा और ज्ञान-मार्ग को बतलाया जब कि कबीर ने हिन्दू-धर्म को छोड़कर एक नये धर्म की कल्पना की । इस प्रसंग में रविदास का नाम हिन्दू-धर्म के इतिहास में वैसे ही उल्लेखनीय है जैसे महात्मा तुलसीदास तथा महात्मा गांधी का । यह है निस्पृह ज्ञानियों की जातिगत धर्म तथा संस्कृति की मूक सेवा !

११—रविदास के धार्मिक अनुभव

संत रविदास के धार्मिक अनुभव अनेक हैं। यहां कुछेक का वर्णन किया जाता है जिनका धर्म-दर्शन में विशेष महत्त्व है।

धर्म का स्वरूप

संत रविदास को धार्मिक मूलप्रवृत्ति (Instinct) या भाव (Sentiment) का सच्चा बोध था। वे इसकी तुलना भूख, प्यास, कामवासना और कला-प्रेम से करते हैं। किन्तु धार्मिक प्रवृत्ति इन चारों प्रवृत्तियों से भिन्न है। जैसे चातक स्वाती की बूँद का प्रेमी है, जैसे स्त्री पति को प्रेम करती है, जैसे चकोर चन्द्रमा का प्रेमी है, जैसे मोर बादल का प्रेमी है वैसे भक्त ईश्वर का प्रेमी है।

प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा ।

जैसे चितवत चन्द चकोरा ॥

मोर पक्षी बादल को देखकर नाचता है। यह उसकी कलात्मक प्रवृत्ति का सहज प्रकाशन है। चकोर पक्षी चन्द्रमा को अपना भोज्य पदार्थ समझकर देखता ही रहता है। यह उसकी क्षुधा का प्रकाशन है। पत्नी पति को पाकर अपनी काम-वासना को तृप्त करती है।

सह की सार सुहागिनि जानै ।

तजि अभिमान सुख रलिया मानै ॥

तन मन देइ न सुनै अंतर राखै ।

अवरा देखि न सुनै न माखै ॥

इसी प्रकार चातक स्वाती की बूँद का प्यासा है। ऐसे ही भक्त ईश्वर का प्रेमी है। इन दृष्टान्तों के द्वारा संत रविदास मनुष्य और ईश्वर के सहज प्रेम का परिचय देते हैं जो वास्तव में एक भाव या एक मूल प्रवृत्ति हैं।

उनके लिए यही मनुष्य का सर्वस्व है । अन्य भाव या प्रवृत्तियाँ इस पर आश्रित हैं ।

आधुनिक युग में फ्रायड ने धार्मिक प्रवृत्ति का अन्तर्भाव काम-वासना में किया है और मार्क्स ने उसका अन्तर्भाव नशा या तृषा-तृप्ति में किया है । संत रविदास के अनुसार ये दोनों मत भ्रान्त हैं क्योंकि धार्मिक प्रवृत्ति स्वतः एक स्वतन्त्र प्रवृत्ति है और उसका अन्तर्भाव किसी प्रवृत्ति में नहीं हो सकता है ।

धर्म न तो नशा है और न रोटी । नशा प्यास का विषय है और रोटी क्षुधा का । फिर धर्म न तो कामुकता है और न कला । कामुकता मैथुन-प्रवृत्ति का विषय है और कला नृत्य, संगीत या वाद्य कलात्मक प्रदर्शन का । धर्म इन चारों से पृथक् है । वह एक पाँचवी वस्तु है । उसका अन्तर्भाव किसी में नहीं हो सकता है ।

यहां पर संत रविदास धर्म-मनोविज्ञान की समकालीन खोजों के अनुकूल कहते हैं । धर्म मानव की तृषा, क्षुधा, वासना या कला है । किन्तु यह मात्र तुलनात्मक या रूपकात्मक कथन है । इसका प्रयोजन केवल यह दिखाना है कि धर्म मानव की एक मौलिक माँग है, आवश्यकता है ।

इस माँग का विषय अनन्त (Infinite) सत् है । उसका यथावत् वर्णन नहीं हो सकता है क्योंकि वह अवर्णनीय है । किन्तु अवर्णनीय होते हुए भी वह अनुभवगम्य है । रविदास का यह मत भी आधुनिक धर्म-दार्शनिकों के विचारों से समर्थित है । प्रोफेसर मैक्समूलर ने अनन्त के बारे में और आटो ने अनाम (नूमिनस) के बारे में जो कुछ कहा है वह संत रविदास के वचनों और अनुभवों का समर्थन करता है ।

धार्मिक अनुभव का स्वरूप : शीतल प्रकाश

संत रविदास के अनुसार धार्मिक अनुभव में सूर्य और चन्द्रमा के गुण हैं ।

“सूर चन्द दोउ सन्मुख होई ।” उसमें सूर्य का प्रकाश और चन्द्रमा का शैत्य है । इस प्रकार धार्मिक अनुभव शीतल प्रकाश है ।

लोक में देखा जाता है कि जो प्रकाशक है वह उष्ण है जैसे अग्नि और जो शीतल है वह प्रकाशरहित है जैसे हिम । किन्तु धार्मिक अनुभव में ये दोनों विरोधी गुण रहते हैं ।

प्रकाश बुद्धि का स्वरूप है और शीतलता हृदय का । शीतल प्रकाश का तात्पर्य भक्तिपूर्ण ज्ञान है । वह ज्ञान-भक्ति है ।

धार्मिक अनुभव प्राप्त करने के लिए कोरा ज्ञान और कोरी भक्ति असमर्थ हैं । कोरा ज्ञान बुद्धि का बिलास है । उसमें माधुर्य या शैत्य नहीं है अर्थात् वह फलप्रद नहीं है । कोरी भक्ति अन्धविश्वास है । उसमें दिशा-बोध नहीं है, गति नहीं है, प्रकाश नहीं है । अतः धार्मिक अनुभव प्राप्त करने के लिए बुद्धि और हृदय का सहयोग होना चाहिए ।

बौद्ध धर्म में इसी तत्त्व को प्रज्ञा और करुणा का सह-अस्तित्व कहा गया है ।

अमावस्या के चन्द्र-दर्शन

सब लोग जानते हैं कि अमावस्या की रात को चन्द्रमा का दर्शन नहीं होता है । किन्तु संत रविदास ने भगवत्प्राप्ति को अमावस्या का चन्द्र-दर्शन बताया है ।

जो मन बिन्दै सोई बिन्द ।

अमा समय ज्यों दीसे चन्द ॥

यहां अमा या अमावस्या की रात का क्या अर्थ है ? चन्द्र-दर्शन का क्या अर्थ है ? संतों की भाषा में अमा को आत्मा की काली रात कहा जाता है और चन्द्र-दर्शन को आत्मा की ऊषा कहा जाता है । इसका तात्पर्य है कि संत को भगवान् के दर्शन के पूर्व घोर त्याग और बलिदान करना पड़ता

है, बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। जब संत इसमें उत्तीर्ण हो जाता है तभी उसे भगवद्-दर्शन का पुरस्कार मिलता है। त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः। त्याग से ही अमृत पद की प्राप्ति होती है। ऐसा वेद के ऋषियों का अनुभव है। ऐसा ही अनुभव पश्चिम के ईसाई संतों का है जिन्होंने आत्मा की काली रात और आत्मा की ऊषा का रूपात्मक वर्णन किया है। संत रविदास की भगवत्प्राप्ति इन सब संतों के अनुभवों से सर्वथा सत्यापित हो जाती है। जब सभी संतों का इस अनुभूति पर मतैक्य है तब इस अनुभूति को मिथ्या नहीं कहा जा सकता है ! इसको सत्संग से ही जाना जा सकता है, सत्संग से ही प्राप्त किया जा सकता है और सत्संग से ही प्रमाणित किया जा सकता है। यही अनुभव संतों का सर्वस्व है। और यह सत्संग पर निर्भर है। यही कारण है कि सभी संतों ने सत्संग की महिमा गाई है। उन्होंने कहा है कि आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त करने का साधन एकमात्र सत्संग है। संत रविदास भी यही कहते हैं :—

साधु संगत बिना भाव नहि ऊपजै,
भाव भगति क्यों होइ तेरी।

सहायक ग्रन्थ

१. रैदास जी की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
२. गुरुग्रन्थ साहब—भाई गुरु दयाल सिंह, अमृतसर
३. मीराबाई की पदावली—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
४. भक्तमाल—नाभादास, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
५. कबीर और रैदास संवाद (हस्तलिखित)—सेना
६. रैदास रामायण
७. रविदास सहिमा—रामचरण कुरील, कानपुर
८. उत्तरी भारत की संत परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी,
भारती भण्डार, प्रयाग
९. परमार्थ-सोपान—प्रो० रामचन्द्र दत्तात्रेय रानडे
१०. संत सुधासार—वियोगी हरि
११. कबीर—हजारी प्रसाद द्विवेदी
१२. Dr. P. D. Badthwal—The Nirguna School
of Hindi Poetry, The Indian Book
Shop, Benaras.
१३. Dr. H. H. Wilson—Religious Sects of the
Hindus, Trubner.
१४. Dr. S. N. Dasgupta—Hindu Mysticism.
१५. Dr. R. D. Ranade—Mysticism in Maha-
rashtra, Poona.

१६. Dr. R. D. Ranade—Pathway to God in Hindi Literature.
 १७. S. L. Pandey—Existence, Devotion And Freedom, The Philosophy of Ravidasa, Darshan Peeth, Allahabad.
 १८. G. V. Briggs—The Chamaras.
 १९. E. Underhill—Mysticism.
 २०. R. N. Tagore - Kabir.
-

“रैदास-साहित्य”

रैदास साहित्य

भाग २

१

राग मलार

^१मागर जनां मेरी जाति बिखियात चमारं ।
 रिदै राम गोविन्द गुनसारं । टेक ।
 सुरसरी ^२सलल कित बाहनी रे,
 संत जन करत नही पानं ।
 सुरा अपवित्र ^३नत ^४अवर जल रे,
 सुरसरी मिलत नहि होइ आनं । १ ।
^५तरतारि अपवित्र कर मानीअै रे,
 जैसे ^६कागरा करत बीचारं ।
^७भगति भागउतु लिखिअै तिह ऊपरे,
 पूजीअै करि नमस्कारं । २ ।
 मेंरी जाति कुटबां ढला ढोर ढोवंता,
 नितहि बनारसी आस-पासा ।
 अब बिप्र प्रधान तिहि करहि डंडउति,
 तेरे नाम सरणाइ रविदामु दासा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—बिखियात = बिख्यात । रिदै = हृदय । सुरसरी = गंगा । सलल =
 सलिल, जल । कित = कृत । नत = लाई हुई । तरतारी = तत्काल ।
 कुटबां = कुटुम्ब वाले । ढला = मृत । सरणाइ = शरणागति ।
 कागरा = कागज ।

पाठभेद—१-ऐसी, २-जल, ३-तिनि, ४-गंग जल, ५-ततकरा, ६-कागदगद
 ७-भगवत भगवंत जब ऊपरे लेखिए । तीसरे छन्द के स्थान पर यह
 भी पाठ पाया जाता है :—

अनेक अधम जिव नाम गुन ऊपरे ।
 पतित पावन भये परसि सारम् ।

भनत रैदास ररंकार गुन गावते ।
संत साधू भये सहज पारम् ।

विशेष—इस पद से रविदास की जाति ज्ञात होती है । सत्संगति का महत्व इतना है कि अपूज्य भी पूज्य हो जाते हैं । रविदास की जाति वाले ढौर ढोने का काम बनारस के आस-पास करते थे । रविदास को पहले बड़ा अपमान सहना पड़ा था । इस पद की रचना के समय में उनका सम्मान ब्राह्मणों द्वारा भी बढ़ चला था । “अब” का यही अभिप्राय है ।

२

राग मलार

हरि जपत तेऊ जनां पदम कवलासपति, तासम तुलि नही आन कोऊ ।
एक ही एक अनेक होइ बिसथरिओ, आन रे आन भर पूरि सोऊ ।
जाकै भागवतु लेखीअै अवरु नही पेखीअै, तासकी जाति आछोप छीपा ।
बिआस महि लेखीअै सनकमहि पेखीअै, नाम की नामना सपत दीपा ।
जाकै ईदि बकरीदि कुल गऊरे बधुकरहि, मानीअै सेख सहीद पीरा ।
१ जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सगी, तिहूरे लोक परसिध कबीरा ।
जाके कुटुम्ब के टेढ सभ ढोर ढोवंत फिरहि, अजहुँ बनारसी आसपासा ।
आचार सहित बिप्र करहि डंडउति तिन तनै, रविदास दासानदासा ।

नोट—यह पद रज्जब दास के सर्वांगी में पीपा के नाम से मिलता है ।

शब्दार्थ—कवलासपति = कैलाशपति । बिसथरिओ = विस्तृत हो गया, फैल गया । टेढ = टेढ जाति के लोग ।

पाठभेद—१-बापि वैसी करी पूत ऐसी धरी, नांव नवखण्ड परसिध कबीरा ।

विशेष—इस पद में नामदेव, व्यास, सनक और कबीर का भगवान् का नाम जपते हुए मुक्त होना कहा गया है । कबीर का पिता मुसलमान था, ईद-बकरीद मानता था, गायों का बध करता था और शेख, शहीद और पीर की पूजा करता था । कबीर तीनों लोक में प्रसिद्ध हो गया । रविदास के कुटुम्ब के लोग ठेठ कहे जाते हैं और वे मरे ढोरों को बनारस के आस-पास ढोते हैं । 'अजहुँ' का अभिप्राय है कि जब रविदास भक्त मुक्त हो गये तब भी । सदाचारी ब्राह्मण भी रविदास को दण्डवत् करते हैं । तीसरी पंक्ति का अर्थ स्फुट नहीं है । भागवतकार संत ज्ञानदेव हैं या व्यास जी, नामदेव नहीं है । छीपा नामदेव हैं । ज्ञात होता है कि रविदास जी नामदेव दीपा या छीपा को ही ज्ञानदेव समझकर भागवतकार भी मानते थे । अथवा भागवत का अर्थ भगवत्-सम्बंधी काव्य से हो सकता है । नामदेव भी इस प्रकार भगवत्-सम्बंधी काव्य के प्रणेता हैं ही ।

३

राग मलार

मिलत पिआरो प्रान-नाथु कवन भगति ते ।
 साध-संगति पाई परमगते । रहाउ ।
 मैले कपरे कहा लउ धोवउ ।
 आवेगी नींद कहा लगु सोवउ । १।
 जोई जोई जोरिओ सोई सोई फाटिओ ।
 भूठै बनजि उठि गई हाटिओ । २।
 कहु रविदास भइओ जब लेखो ।
 जोई जोई कीनो सोई सोई देखिओ ॥ ३॥

शब्दार्थ—परम गति = मोक्ष । जोरयो = संबंध जोड़ा । फाट्यों = बिछड़ गया ।
 बनजि = व्यापार । हाट्यो = हाट, पेठ ।

पाठभेद—कवन भगति ते रहै प्यारो पाहुनो रे । घर-घर देखो मैं अजब
अभावनो रे । टेक ।

मैला मैला कपड़ा केता एक धोऊँ । आवे आवे नींदहि कहां लों
सोऊँ ॥१॥

ज्यों ज्यों जोड़ै त्यों त्यों फाटे । भूठै सबनि जरे उठि गयो
हाटे ॥२॥

कह रैदास पर्यो जब लेख्यो । जोई जोई कियो रे सोई सोई
देख्यो ॥३॥

विशेष—मैला कपड़ा का अर्थ शरीर है । नींद से अभिप्राय अज्ञान का है ।
सत्संग से ही परमगति या मोक्ष मिल सकता है । 'कर्मवाद' का भी
सिद्धान्त अंतिम दो पंक्तियों में वर्णित है । प्रश्न करना दार्शनिक
का उस प्रश्न का उत्तर भी बताता है । किस भक्ति से प्राणनाथ
मिलते हैं ? इसका अभिप्राय है कि रविदास उस भक्ति को जानते हैं
जिससे प्राणनाथ मिलते हैं । वह भक्ति सत्संग से प्राप्त होती है ।

४

राग बसंतु

तुभहि सुभंता कछु नाहि ।
पहिरावा देखे उभि जाहि ।
गरबवती का नाही ठाउ ।
तेरी गरदनि ऊपरि लवै काउ ॥१॥
तू कांइ गरबहि बावली ।
जैसे भादउ खूब राजु तू तिसते खरी उतावली । रहाउ ।
जैसे कुरंक नही पाइओ भेदु ।
तनि सुगंध दूँदै प्रदेसु ।
अप तन का जो करे बीचार ।
तिसु नही जम कंकर करे खुआर ॥२॥

पुत्र कलत्र का करहि अहंकार ।
 ठाकुर लेखा मगनहार ।
 फेड़े का दुख सहै जीव ।
 पाछे किसहि पुकारहि पीउ पीउ ।
 साधू की जड लेहि ओट ।
 तेरे मिटहि सब पाप कोटि कोटि ।
 कहि रविदास जो जपै नामु ।
 तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु ।

शब्दार्थ—अप तन = अपना शरीर । पहिरावा = बनावट, शृंगार । उभि
 जाहि = ऊब जाना, व्याकुल होना । गरबवती = अहंकारी ।
 गरदनि = गरदनी, गले में पहनने का आभूषण, तिलक । लवै = प्रेम
 करे । कांइ = काहे, क्यों । राजु = रहती है । तिसते = तृष्णा से,
 प्यास । जम-कंकरु = यम-दूत । खुआरु = खोर, बुरी दशा । फेड़े का
 = फोकट का, व्यर्थ ही ।

५

राग भैरव

१बिनु देखेउ उपजै नही आसा ।
 जो दीसै सो होइ विनासा ।
 बरन सहित जो जापै नामु ।
 सो जोगी केवल निहकामु । १।
 परचै रामु खैर जउ कोई ।
 पारसु३ परसै दुबिधा न होई ॥ १॥ रहाउ ।
 ४सो मुनि मनकी दुबिधा खाइ ।
 बिनु दुआरे त्रैलोक समाइ ।

मन का सुभाउ सभु कोइ करै ।
करता होइ सु अनमै रहै ॥२॥

फल कारन फूली बनराइ ।
फल लागी तब फूलु बिलाइ ।
गिआनै कारन करम अभि आसु ।
गिआन भइया तह करमह नासु ॥३॥

त्रित कारन दधि मथै सइआन ।
जीवत मुकत सदा निरवान ।
कहि रविदास परम बैराग ।
रिदै रामु की न जपिसि अभाग ॥४॥

पाठभेद—१. जे दीसे ते सकल विनास । अनदीठे नाही बिसवास ।

२. रमै । ३. या रस ।

४. सो मन कौन जो मन को खाइ । बिन छोरे तिरलोक समाइ ।
मन की महिमा सब कोई कहै । पंडित सो जो अनतै रहै ।

इस पद में ये पंक्तियाँ भी पाई जाती हैं—

बट के बीज जैसा आकार । पसरयो तीन लोक पासार ।
जँह का उपजा तहाँ बिलाइ । सहज सुनि में रह्यो लुकाइ ।
जे मन बिदै सोई बिद । अमा समय ज्यों दीसै चंद ।
जल में जैसे तूँबा तिरै । परिचै पिंड जीव नहि मरै ।

शब्दार्थ—परचै = स्वानुभूतिपूर्वक, जान व समझ कर । दुविधा खाइ = संशय रहित हो जाता है । बिनु दुआरे = सहज ही । करता . . . रहै = स्वानुभव पूर्व ही वास्तविक कर्ता है । बनराइ = वृक्षों का समूह ।

विशेष—यह पद रविदास का तत्त्वज्ञान (Ontology) और आचार-शास्त्र (Ethics) बताता है ।

तुलनीय पद—(१) जानें बिनु न होइ परतीती ।

बिनु परतीति होइ नहि प्रीती ।

प्रीति बिना नहि भगति दिढ़ाई ।

जिमि खगपति जल कै चिकनाई ।

रामचरित मानस उत्तर काण्ड ८८वें दोहे के बाद ।

(२) ज्ञान के कारन कदम कराय ।

होय ज्ञान तब करम नसाय ॥

फल कारन फूले बनराय ।

फल लागे पर फूल सुखाय ॥

‘कबीर’ हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० २३५

६

रागु माख

ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै ।

गरीबनिवाजु गुसईआ मेरा माथै छत्रु धरै । १। रहाउ ।

जाकी छोति जगत कउ लागे तापर तुहीं ढरै ।

नीचहि ऊंच करै मेरा गोबिंदु काहू ते न डरै । १।

नामदेव कबीर तिलोचनु सधना सैनु तरै ।

कहि रविदासु सुनहु रे संतहु हरि जीउते सभै सरै । २।

शब्दार्थ—गुसईआ = गुसैयाँ = स्वामी । छत्रु = राजछत्र । छोति = छूत ।

ढरै = कृपा करता है । तिलोचन = त्रिलोचन नाम का एक भक्त ।

इनका जन्म सन् १२६७ ई० या सं० १३२४ विक्रमी है । प्रियादास के अनुसार इनका जन्म बैश्य-कुल में था । नाभादास के अनुसार ये और नामदेव संत ज्ञानदेव के शिष्य थे । प्रसिद्ध है कि इनके यहाँ

भगवान् ने ही 'अन्तर्यामी' बनकर कुछ दिनों तक नौकरी की थी । आदिग्रंथ में इनके नाम से ४ पद पाए जाते हैं । त्रिलोचन और नामदेव की वार्ता से संबंध रखने वाले कुछ सलोक (दोहे) उपलब्ध हैं । इनके अतिरिक्त इनको अन्य रचनाएँ नहीं पाई जाती हैं ।

कबीर—कबीरदास रामानंद के शिष्य थे । इनका जन्म-सन् तथा मृत्यु-सन् विवादास्पद है । प्रायः इनका जीवन काल सं० १४२५ से सं० १५०५ वि० या सन् १३६८ ई० से सन् १४४८ ई० माना जाता है । (देखिए उत्तरी भारत की संत परम्परा पृष्ठ १३६) ।

नामदेव—इनकी जाति छोपी थी । ये एक मराठा संत थे । इनका जीवन काल सं० १३२६ वि० से सं० १४०७ वि० या सन् १२७० ई० से सन् १३५० ई० माना जाता है । (देखिए *Mysticism in Maharashtra* PP. 185 और 187)

सधना—ये कसाई जाति के संत थे और नामदेव के समकालीन थे । ये प्रसिद्ध संत हैं । (देखिए संत काव्य पृष्ठ १३७) । इनका रचित एक ही पद आदि ग्रंथ में मिलता है ।

सेन—सेना नाई नाई जाति के संत थे । इनका जीवन काल सन् १४४८ ई० के आस-पास है (देखिए *Mysticism in Maharashtra* पृष्ठ १६०) । ये संत ज्ञानेश्वर के समकालीन थे । आदि ग्रंथ में संगृहीत इनका एक ही पद है जिससे ये स्वामी रामानंद के समकालीन कहे जाते हैं । इनकी बानियाँ फुटकल रूप से मराठी और हिन्दी संग्रहों में पाई जाती हैं ।

विशेष—(१) रविदास नामदेव, त्रिलोचन, सधना, कबीर और सेना के तरने का उल्लेख करते हैं । इससे ज्ञात होता है कि ये इन संतों के बाद हुए ।

(२) इस पद में एक अन्तर्कथा छिपी हुई है जो रविदास से संबद्ध रखती है। "मेरा माथे छत्र धरै" का अर्थ है कि रविदास को लोगों ने राजा की भाँति सिंहासन पर बैठाकर आदर कराया था। कुछ लोगों का कहना है कि एक बार रविदास और परिडतों में शास्त्रार्थ हुआ। परिडत हार गये। इस पर पूर्व शत के अनुसार उन्होंने राजसिंहासन पर बैठाकर रविदास को काशी नगर में घुमाया। पर यह कथा असत्य प्रतीत होती है। सत्यांश केवल इतना है कि रविदास की जाति वालों तथा शिष्यों ने रविदास के मस्तक पर छत्र पहनाया था। नाभादास भी इसी बात का उल्लेख करते हैं :—राजसिंहासनु बैठि ज्ञाति परतीति दिखाई।

७

राग मारू

सुख सागर सुरितरु चितामनि कामधैन बसि जाके रे ।

चारि पदारथ असट महासिधि१ नवनिधि करतल ताके ।१।

हरि हरि हरि न जपसि रसना ।

अवर सभ छाडि२ बचन रचना ।१। रहाउ ।

नाना खिआन पुरान वेद बिधि चउतीस अछर माही ।

बिआस बीचारि कहिओ परमाथु राम नाम सरि नाही ।२।

सहज समाधि उपाधि-रहत होइ बडे भागि लिवइ लागी ।

कहि रविदास उदास दासमति जनम-मरन भै भागी ।

नोट—यह पद आदिग्रंथ में दो बार आया है। राग सोरठ और राग मारू में।

पाठभेद १. दसा । २. तिग्राणि

३. लिव = लव

शब्दार्थ—चारि पदार्थ—१ धर्म, २ अर्थ, ३ काम, ४ मोक्ष । अष्टमहासिद्धि
= अष्ट महासिद्धि—अणिमादि यथा—अणिमा लघिमा प्राप्तिः
प्राकाम्यं महिमा तथा ।

ईशित्वञ्च वशित्वं च तथा कामावशायितां ।

नवनिधि—पद्मादि यथा—

पद्मोऽस्त्रिया महापद्मः शंखो मंकरकच्छपौ ।

मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वोऽपि निधयो नव ।

खिआन = आख्यान । चउतींस अक्षर—ओ३म और क से लेकर ह तक अक्षर ३४ अक्षर कहे जाते हैं । बिआस = व्यास, पुराणों के प्रसिद्ध रचयिता । सरि = बराबर । लिव = लौ, प्रेम । उदास = विरक्त । दास-भक्ति = भक्ति-बुद्धि से ।

विशेष—‘राम’ ये दो अक्षर रविदास के लिए सुरतरु, चितामणि और कामधेनु थे अर्थात् उनकी सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाले थे । इस पद से ज्ञात होता है कि रविदास उदास या विरक्त थे ।



राग रामकली

पड़ीअ गुनीअ नामु सभु सुनीअ, अनभउ भाउ न दरसै ।

लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे, जउ पारसहि न परसै ।१।

देव सांसै गांठि न छूटे ।

कामै क्रोध माइआ मद मत्तसर इन पंचहु मिलि लूटे ।१। रहाउ ।

हम बड़ कबि कुलीन हम पंडित हम जोगी सनिआसी ।

गिआनी गुनी सूर हम दाते, इह बुवि कबहि न नासी ।२।

कहु रविदास सभै नही समझसि, भूलि परे जैसे बउरे ।
मोहि अधार नाम नाराइन जीवन प्रान धन मोरे ।३।

पाठभेद—राम बिन संसय गाँठि न छूटै ।

काम किरोध लोभ मद माया, इन पंचन मिलि लूटै । टेक ।
हम बड़ कवि कुलीन हम पंडित, हम जोगी सांयासी ।
ज्ञानी गुनी सूर हम दाता, याहु कहे मति नासी ।१।
पढ़े गुने कछु समुझि न परई, जौं लीं भाव न दरसै ।
लोहा हिरन होय धौं कैसे, जौं पारसु नहि परसै ।१।
कहु रेदास और असमुझ सी, चालि परे भ्रम भोरे ।
एक आधार नामहरि को, जीवन प्रान धन मोरे ।३।

शब्दार्थ—अनभउ भाव = स्वानुभूति का भाव । कंचनु हिरन = खरा सोना ।
बउरे = बावला, पागल ।

विशेष—इस पद में पढ़ने और गुनने की व्यर्थता तथा स्वानुभूति का महत्व बताया गया है । संशय की ग्रंथि से सभी लोग बंधे हैं । बिना स्वानुभूति के इस गाँठ से छूटना कठिन है ।

तुलनीय पद—का पढ़िये का गुनिये, का बेद पुराना सुनिये ।

पढ़े गुने मति होई, मैं सहजै पाया सोई ।

कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १७७ पद २६२ ।

६

रागु गोंड

मुकंद मुकंद जपहु संसार ।

बिनु मुकंद तनु होइ अउहार ।

सोई मुकंदु मुक्ति का दाता ।

सोई मुकंदु हमरा पिता माता ।१।

जीवन मुकंदे मरत मुकंदे ।
ताके सेवक कउ सदा अनंदे ।१। रहाउ ।

मुकंद मुकंद हमारे प्रानं ।
जपि मुकंद मसतकि नीसानं ।
सेव मुकंद करै बैरागी ।
सोई मुकंदु दुरबल धनु लाधी ।२।

एकु मुकंदु करै उपकार ।
हमरा कहा करै संसार ।
मेरी जाति हुए दरबारि ।
तुही मुकंद जोग जुगतारि ।३।

उपजिअो गिअानु हूआ परगास ।
करि किरपा लीने कीटदास ।
कहु रविदास अब तिसना चूकी ।
जपि मुकंद सेवा ताहू की ।४।

शब्दार्थ—मसतकि नीसानं = जब तक कि मस्तिष्क पर चिन्ह न हो जाय, निरन्तर प्रचुर मात्रा में । अउहार = नग्न । सोई.....लाधी = वही मुकुन्द बलहीनों की धन-लब्धि या अर्थ-प्राप्ति है । जब बैरागी मुकुन्द की सेवा करता है तो मुकुन्द की ही वह अर्थ-प्राप्ति करता है ।
कीटदास = क्रीतदास

विशेष—रविदास बैरागी थे और मुकुन्द-मुकुन्द जपते थे । मुकुन्द उनके राम का ही इतर नाम है । उनकी जातीयता को मुकुन्द ने मिटा दिया था और वे मुकुन्द के दरबारी या पास रहने वाले भक्त बन गये थे ।
“ज्ञान” का उत्पन्न होना, प्रकाश होना आदि रविदास की अध्यात्म-भावना प्रकट करते हैं ।

१०

रागु गोंड

जे ओहु अठिसठि तीरथ न्हावै ।
 जे ओहु दुआदस सिला पूजावै ।
 जे ओहु कूप तटा देवावै ।
 करै निद सभ बिरथा जावै ।१।
 साधका निदकु कैसे तरै ।
 सरपर जानहु नरक ही परै ।१। रहाउ ।
 जे ओहु ग्रहन करै कुलखेति ।
 अरपै नारि सीगारि समेति ।
 सगली स्त्रिमिति स्रवनी सुनै ।
 करै निद कवनै नही गुनै ।२।
 जे ओहु अनिक प्रसाद करावै ।
 भूमि दान सोभा मंडवि पावै ।
 अपना बिगारि बिरांता सांढै ।
 करै निद बहु जोनी हांढै ।३।
 निदा कहा करहु संसारा ।
 निदक का परगटि पाहारा ।
 निदकु सोधि साधि बीचारिआ ।
 कहु रविदास पापी नरक सिधारिआ ।४।

शब्दार्थ—ओह = वह । अठिसठि = ६८, ६८ तीर्थ कदाचित् रविदास के समय
 विख्यात थे । दुआदस = द्वादश, १२ । दुआदस सिला = बारह
 मूर्तियों की पूजा ।

कूप तटा = कुआँ और तलाब । देवावै = दिलवाना, कूप और तड़ाग

को खुदवाकर दे देना ।

सरपर = निश्चय ही ।

विशेष—इस पद में निंदा की निंदा की गई है । ६८ तीर्थों का उल्लेख कबीर ने भी किया है । देखिए कबीर ग्रन्थावली पृ० ३३२ लौकी अठसठि तीरथ न्याई । कौरापन तऊ न जाई ।

रविदास प्रारम्भिक अवस्था में द्वादश शिला पूजते थे, तीर्थ स्नान करते थे, स्मृति सुनते थे । निन्दा करने पर वे सब व्यर्थ हो जाते हैं । तात्पर्य है कि लोगों को उन सभी को तो करना ही चाहिए किन्तु साथ ही निंदा भी न करनी चाहिए ।

११

राग बिलावलु

दारिद्रु देखि सभ को हसै, ऐसी दसा हमारी ।

असट दसा सिधि करतलै, सभ क्रिपा तुमारी ।१।

तू जानत मैं किछु नहीं, भवखंडन राम ।

सगल जीउ सरनागती, प्रभ पूरन काम ।१। रहाउ ।

जो तेरी सरनागता, तिन नाही भारु ।

ऊच नीच तुम ते तरे, आलजु संसार ।२।

कहि रविदास अकथ कथा, बहु काइ करीजै ।

जैसा तू तैसा तुही, किआ उपमा दीजै ।

शब्दार्थ—असट दसा सिधि = अष्टादस सिद्धि, आठों अणिमादि सिद्धियाँ ।

आलिज, = आज तक । काइ = क्या ।

विशेष—इस पद से सूचित होता है कि रविदास के दारिद्र्य पर लोग हँसा करते थे । बाद को ईश-कृपा से अष्टादश सिद्धियाँ भी उनके हाथ

में हो गई थीं । परमतत्त्व की अनिर्वचनीयता का सिद्धान्त भी यहाँ प्रतिपादित किया गया है ।

तुलनीय पद—जस तूँ तस तोहि कोइ न जान ।

लोग कहैं सब आनहि आन ।

कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १०३, ४७ ।

१२

राग बिलावलु

जिह कुल साधु बैसनो होइ

बरन अबरन रंकु नही ईसुर, बिमल बासु जानीअ जीग सोइ ।१। रहाउ ।

ब्रह्मन बैस सूद अरु ख्यत्री, डोम चंडार मलेछ किन सोइ ।

होइ पुनीत भगवंत भजन ते, आपु तारि तारै कुल दोइ ।१।

धनि सु गाउं, धनि सो ठाउ, धनि पुनीत कुटंब सभ लोइ ।

जिनि पीआ सार रसु तजे आन रस, होइ रसमगन डारे बिखु खोइ ।२।

पंडित सूर छत्रपति राजा, भगत बराबरि अउरु न कोइ ।

जैसे पुरैन पात रहै जल समीप, भनि रविदास जनमे जगि ओइ ।३।

शब्दार्थ—बैसनो=वैष्णव, हरि-भक्त । ईसुर=राजा । बरन=वर्ण । अबरन=अवर्ण । किन=क्यों न । लोइ=लोग ।

सार-रस=परम तत्त्व की अनुभूति का आनंद । आन-रस=विषय-भोग । जनमे जग ओइ=जगत में उसी का जन्म लेना सार्थक है ।

कुलदोइ=माता तथा पिता दोनों का कुल ।

तुलनीय पद—ऐसा ही एक कबीर का पद है—

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई ।

अबरन बरन न गनिय रंक धनि, बिमल बास निज सोई ॥

बाम्हन छत्री वैसे सूद्र सब भगत समान न कोई ।
धन हो गाँव ठाँव अस्थाना ह्वै पुनीत सँग लोई ॥
होत पुनीत जपै सतनामा, आपु तरै तारै कुल दोई ।
जैसे पुरइत रह जल भीतर, कह कबीर जग में जन सोई ॥

संत-सुधा-सार पृष्ठ ११३ पद ११५

विशेष—इस पद से ज्ञात होता है कि रविदास भी वैष्णव थे । वैष्णव का आदर्श वे अपने सामने रखते थे । इसमें जीवन्मुक्ति की दशा का भी वर्णन है ।

१३

रागु सूही

सह की सार सुहागनि जानै ।
तजि अभिमानु सुख रलीआ मानै ।
तनु मनु देइ न अंतरु राखै ।
अवरा देखि न सुनै न भावै ।१।
सो कत जानै पीर पराई ।
जाकै अंतरि दरदु न पाई ।१। रहाउ ।
दुखी दुहागनि दुइ पख-हीनी ।
जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी ।
पुरसलात का पंथ दुहेला ।
संगि न साथी गवनु इकेला ।२।
दुखीआ दरदवंदु हरि आइया ।
बहुतु पिआस जबीबु न पाइआ ।
कहि रविदास सरन प्रभ तेरी ।
जिउ जानहु तिउ करु गति मेरी ।३।

शब्दार्थ—सह = मिलन । सार = सेज वा सुख, आनंदतरंग । सुख रलीआ = एकाकार हो जाने का आनन्द । अवरा = अन्य । दुहागनि = अभागिनी । दुइ पखहीनीं = लोक-परलोक जिसके दोनों बिगड़ गये । दुहेला = कठिन, दुःखदायी । पुरस लात = पुरुष-रति ।

पाठभेद—सो कहा जानै पीर पराई ।

जाके दिल में दरद न आई । टेक ।

दुखी दुहागनि होइ पियहीना ।

नेह निरति करि सेव न कीना ।

स्याम प्रेम का पथ दुहेला । चलन अकेला कोइ संग न हेला । १।

सुख की सार सुहागनि जानै, तन मन देय अंतर नहि आनै ।

आन सुनाय और नहि भाखे, रामरसायन रसना चाखे । २।

खालिक तो दरमंद जगाया, बहुत उमेद जवाब न पाया ।

कह रैदास कवन गति मेरी, सेवा बंदगी न जानूँ तेरी । ३।

विशेष—इस पद में रहस्यवाद की झलक है :

१

रागु सूही

जो दिन आवहि सो दिन जाही ।

करना कूचु रहनु थिरु नाही ।

संगु चलन है हम भी चलना ।

दूरि गवनु सिर ऊगरि मरना । १।

किआ तूँ सोइआ जागु इयाना ।

तै जीवनु-जगि-सचु करि जाना । १। रहाउ ।

जिन जीउ दीआ सु रिजकु अंबरावे ।

सभ घट भीतरि हाडु चलावे ।

करि बंदगी छांडि मैं मेरा ।
 हिरदै नाम सम्हारि सबेरा ।२।
 जनमु सिरानो पंथु न सवारा ।
 सांभ परी दह दिस अंधियारा ।
 कहि रविदास नदान दिवाने ।
 चेतसि नाही दुनीआ फनखाने ।३।

शब्दार्थ—रिजक = रोजी । अंवरावै = जुटाता है । हाटु = पेठ, लेन-देन ।
 सम्हारि = स्मरण कर । सबेरा = जल्दी । दह = दस । नदान =
 नादान, मूर्ख । फनखाने = नाशवान् । संगु = साथी । सिर ऊपरि =
 निश्चय ही ।

पाठभेद—दूसरे छंद के बाद ये पंक्तियाँ भी पाई जाती हैं—

जो कुछ बोया लुनिये सोई, तामें फेर-फार कस होई ।
 छाड़िय कूर भजै हरि चरना, ताको मिटै जनम अरु मरना ।
 आगै पंथ खरा है भीना, खांडे धार जैसा है पैना ।
 जिस ऊपर मारग है तेरा, पंथी पंथ सँवार सबेरा ।
 क्या तैं खरचा क्या तैं खाया, चलु दरहाल दिवान बुलाया ।
 साहिब तो पै लेखा लेसी, भीड़ पड़े तू भरि भरि देसी ।

विशेष—इस पद में चेतावनी, रहस्यवाद तथा कर्मवाद का वर्णन है ।

१५

राग सूही

ऊचे मंदिर, सालि रसोई ।
 एक घरी फुनि रहनु न होई ।१।
 इहु तनु ऐसा जैसे घास की टाटी ।
 जलि गइअो घास रलि गइअो भाटी ।१। रहाउ ।
 भाई बंध कुटुंब सहेरा ।

ओइ भी लागे काढु सवेरा ।२।
 धर की नारि उरहि तन लागी ।
 उह तउ भूतु भूतु करि भागी ।३।
 कहि रविदास सभै जगु लूटिआ ।
 हम तउ एक राम कहि छूटिआ ।

शब्दार्थ—सालि = चावल, मधुर अन्न । रलि गइओ = मिल गया । सहेरा = सहेला, सखा ।

विशेष—इस पद में रविदास ने दिखाया है कि वे मुक्त हैं और संसार बंधन में है ।

१६

राग जैतिश्री

नाथ, कछूप न जानउ ।
 मनु माइआ के हाथि बिकानउ ।१। रहाउ ।
 तुम कहीअत हो जगतगुर सुआमी ।
 हम कहीअत कलिजुग के कामी ।२।
 इन पंचन मेरो मनु जु बिगारिओ ।
 पलु पलु हरि जीते अंतरु पारिओ ।३।
 जित देखउ तित दुख की रासी ।
 अजौ न पत्याइ निगम भए साखी ।४।
 गोतम-नारि उमापति स्वामी ।
 सीसु धरनु सहस भग-गाँमी ।५।
 इन दूतन खलु बघु करि मारिओ ।
 बडो निलाजु अजहू नही हारिओ ।६।
 कहि रविदास कहा कैसे कीजै ।
 बिनु रघुनाथ सरनि काकी लीजै ।७।

शब्दार्थ—अंतरु पारिओ = भेद डाल दिया । पत्याइ = विश्वास कराना है ।

गोतम-नारि = अहिल्या । गामी = गायक । उमापति = शिव ।

पाठभेद—इस पद में ये पंक्तियाँ भी पाई जाती हैं—

चंचल मनुवाँ चहुँ दिसि धावै । पाँचो इंद्रो थिर न रहावै ।

टेक के बाद ।

लोक बेद मेरे सुकृत बड़ाई लोक लीक मो पै तजी न जाई ।

१ के बाद ।

सनक सनंदन महामुनि जानो । सुक नारद व्यास यह जो बखानी ।

२ के बाद ।

हरिपद बिमुख आस नहि छूटै । ताते तृस्ना दिन-दिन लूटै ।

बहुबिधि करम लिये भटकावै । तुम्हें दौष हरि कौन लगावै ।

केवल राम नाम नहि लीया । संतति विषय स्वाद चित दीया ।

५ के बाद ।

लीक = मर्यादा । संतति = सदा ।

विशेष—इस पद से ज्ञात होता है कि परम्परा (Tradition) तथा शब्द (वेद) रविदास के अनुसार प्रमाण हैं । असमर्थता तथा अलौकिक अपराध की भावनाओं का भी अच्छा चित्रण है ।

१७

राग सोरठ

१ जब हम होते तब तू नाही, अब तू ही मैं नाही ।

२ अनल अगम जैसे लहरि महोदधि, जल केवल जल मांही । १।

माधवे, किआ कहीअ अमु ऐसा ।

जैसा मानीअ होइ न तैसा । १। रहाउ ।

नश्यति एकु सिंघासनि सोइया, सुपने भइआ भिखारी ।

अछत राज बिछुरत दुख पीइआ, सो गति भई हमारी । २।

३ राज-भुइअंग-प्रसंग जैसे हहि, अब कछु मरमु जनाइआ ।

४ कनिक कटक जैसे भूल परे अब कहते कहनु न आइआ ।३।

५ सरबे एकु अनेकै सुआमी, सभ घट भोगवै सोई ।

६ कहि रविदासु हाथ पैने रै सहजे होइ सु होई ।४।

शब्दार्थ—होते = थे । अनल अगम = बडवानल, समुद्र की आग । अच्छत = रहते हुए भी । राज भुइअंग प्रसंग = सर्प-रज्जु का दृष्टांत ।

तुलनीय पद—जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहि ।

सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माहि ।

कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १५ साखी ६५

पाठभेद—१ अब हम हुते तबै तुम नाहीं, अब तुम हौ हम नाहीं ।

२ सरिता गवन कियो लहर महोदधि, जल केवल जल माहीं ।

३ रजु भुअंग रजनी परगासा, अस कछु भरम जनावा ।

४ समुझि परी मोहि कनक अलंकृत, अब कछु कहत न आवा ।

५ करता एक जाय जग भुगता, सब घट सब बिधि सोई ।

६ कह रैदास भगति एक उपजी, सहजै होइ सो होई ।

विशेष—इस पद में अद्वैत वेदान्त (शाङ्कर) का मत प्रतिपादित किया गया है ।

१८

राग सोरठ

१ जउ हम बांधे मोह फांस, हम प्रेम बधनि तुम बांधे ।

२ अपने छूटन को जतनु करहु, हम छूटे, तुम आराधे ।

३ माधवे, जानत हहु जैसी तैसी ।

४ अब कहा करहुगे ऐसी ।१। रहाउ ।

५ मीनु पकरी फांटिओ ॥ ४ काटिओ, रांघि किओ बहुबानी ।

खंड खंड करि भोजनु कीने, तऊ न बिसरिओ पानी ।२।

आपन बापै नाही किसी को, भावन को हरि राजा ।
 मोहु पटल सभु जगतु बिआपिओ, भगतन ही संतापां ।३।
 कहि रविदास भगति इक बाढ़ी, अब इह कासिउ कहीअै ।
 ६ जा कारन हम तुम आराधे, सो दुख अजहू सहीअै ।४।
 पाठभेद—१ तैं हमैं बाँधे मोह फाँसी से, हम तोको प्रेम जेवरिया बाँधे ।
 २ अपने छुटन कै जतन करत हौं, हम छूटे, तोको आराधे ।
 ३ रामराय का कहिये यह ऐसी ।
 ४ जन की जानत हो जैसी तैसी ।
 ५ मीन पकरि काट्यो अरु फाटयो, बाँटि कियो बहु घानी ।
 ६ जो डर को हम तुम को सेवों, सो दुख अजहूँ मरिये ।
 ७ अब काकी डर डरिये ।

शब्दार्थ—जैसी तैसी = वास्तविक स्थिति । फाँकिओ = चोरी गई । बहुबानी =
 अनेक प्रकार से । घानी = जितनी वस्तु एक बार में पकाई जाय ।
 आराधे = (१) पूजा करता हूँ, (२) बाँधे हूँ या बँधे हो । राँधि =
 पकाकर । मीनु = मन । पानी = बिन्दु, सुरति ।

विलेख—इस पद से जीवात्मा तथा परमात्मा, भक्त तथा भगवान् का द्विधा
 संबंध ज्ञात होता है । अध्यात्म शास्त्र की दृष्टि से इस पद का महत्व
 बहुत अधिक है ।

१६

राग सोरठ

दुलभ जनमु पुन फल पाइओ, बिरथा जात अबिवेके ।
 राजे इंद्र सम सरि ग्रिह आसन, बिनु हरि-भगति कहहु किह लेखै ।१।
 न बौचारिओ राजाराम को रसु ।
 जिह रस अनरस बीसरि जाही ।१। रहाउ ।
 जानि अजान भए हम वावर, सोच असोच दिवस जाही ।
 इंद्री सबल निबल बिबेक बुधि, परमारथ परवेस नाही ।२।

कहीअत आन अचरीअत आन कछु, समझ न परै अपर माइआ ।

कहि रविदास उदास दासमति, परहरि कोपु करहु जीअ दइआ । ३।

शब्दार्थ—दुलभ=दुर्लभ । सरि=बराबरी । अनरस=अन्य रस, विषय भोगादि ।

विशेष—इस पद में मानव जीवन का महत्व तथा उपयोग बताया गया है ।

आचार-शास्त्र की दृष्टि से यह उच्चकोटि का पद है ।

२०

राग सोरठ

१ जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा ।

जउ तुम चंद तउ हम भए चकोरा । १।

माधवे, तुम न तोरहु तउ हम नहि तोरहि ।

तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि । १। रहाउ ।

जउ तुम दीवरा तउ हम बाती ।

जउ तुम तोरथ तउ हम जाती । २।

साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी ।

तुम सिउ जोरि अवरि संगि तोरी । ३।

जह जह जाउ तहा तेरी सेवा ।

तुम सा ठाकुर अवरु न देवा । ४।

तुमरे भजन कटहि जमर फांसा ।

भगति हेत गावे रैदासा । ५।

पाठभेद—१ जो तुम बादर तो हम मोरा ।

२ भय ।

शब्दार्थ—दीवरा=दीपक । जाती=यात्री ।

विशेष—यहाँ भक्त तथा भगवान् का सम्बन्ध बड़े दार्शनिक ढंग से सुलभाया गया है । यह सम्बन्ध निम्न है—

- (१) भगवान् मेघ (कारण) है तो भक्त मयूर (कार्य) । मयूर मेघ को देखकर नाचने लगता है । वह मेघ का प्रेमी है । उसके दर्शन से ही वह प्रेम में विभोर हो जाता है । दार्शनिक दृष्टि से मेघ मयूर की गति का नियामक है और इस कारण वह इसका निमित्त कारण (Efficient Cause) है ।
- (२) भगवान् चन्द्र (कारण) है तो भक्त चकोर (कार्य) । चकोर चन्द्र को अग्नि समझकर एकटक देखता रहता है । अग्नि उसका भोज्य पदार्थ है । इस प्रकार चन्द्र चकोर का भोज्य है । दार्शनिक दृष्टि से चन्द्र चकोर का लक्ष्य (Final Cause) या परमार्थ-कारण है ।
- (३) भगवान् दीपक (कारण) है तो भक्त बाती (कार्य) है । दीपक-वर्तिका का सम्बन्ध अंगी और अंग का सम्बन्ध है । वर्तिका के माध्यम से ही दीपक प्रकाश करता है । इसी प्रकार भक्त के माध्यम से ही भगवान् भासित होता है । दार्शनिक दृष्टि से यह सम्बन्ध बताता है कि भक्त और भगवान् का, वर्तिका और दीपक का, एक ही उपादान है । प्रथम पक्ष में वह आत्मा है और द्वितीय पक्ष में प्रकाश । इस प्रकार भगवान् भक्त का उपादान-कारण (Material Cause) है ।
- (४) भगवान् तीर्थ (कारण) है तो भक्त यात्री (कार्य) । भगवान् तीर्थ-यात्रा का आकार (Form) है । इस प्रकार जैसे तीर्थ यात्री का आकार-कारण है वैसे भगवान् भी भक्त का आकार-कारण (Formal Cause) है ।

नोट—भक्त और भगवान् के सम्बन्ध के इस निरूपण में अरस्तू के कारण चतुष्टय-सिद्धान्त का उपयोग किया गया है । अरस्तू ने बाद में इन चार कारणों को दो कारणों में अन्तर्भूत किया—आकार-कारण और उपादान कारण । उपादान-कारण को

छोड़कर अन्य कारण आकार-कारण के अन्तर्गत हैं। फिर अन्त में उसने इन दो कारणों को यथार्थ (Actuality) और संभाव्य (Potentiality) के रूप में रखा। आकार यथार्थ है और उपादान संभाव्य। यथार्थ और संभाव्य का सिद्धान्त सांख्य के सत्कार्यवाद से मिलता-जुलता है क्योंकि यथार्थ शक्त है और संभाव्य उसमें निहित शक्ति। इस प्रकार यद्यपि इन चार कारणों के माध्यम से भक्त और भगवान् का सम्बन्ध ऊपर से भेदवाद प्रतीत होता है तथापि वास्तव में वह अभेदवाद पर आधारित है। भगवान् और भक्त कारण-कार्य होते हुए भी तात्त्विक दृष्टि से अभिन्न हैं। उनका भेद सांस्थानिक है क्योंकि कारण और कार्य एक ही तत्त्व के दो संस्थान मात्र हैं।

२१

राग सोरठ

जल की भीति पवन का थंभा, रक्त बूंद का गारा ।
 हाड मास नाडी को पिंजरु, पंखी बसे बिचारा ।१।
 प्राणी किआ मेरा किआ तेरा ।
 जैसे तरवर पंखि बसेरा ।१। रहाउ ।
 राखहु कंधउ सारहु नीवां ।
 साढ़े तीन हाथ तेरी सीवां ।२।
 बंके बाल पाग सिर डेरी ।
 इहु तनु होइगो भसम को ढेरी ।३।
 ऊंचे मन्दर सुन्दर नारी ।
 राम नाम बिदु बाजी हारी ।४।
 मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी, ओछा जनमु हमारा ।
 तुम सरनागति राजाराम चंद, कहि रविदास चमारा ।५।

शब्दार्थ—भीति = दिवाल । थंभा = स्तम्भ, खम्भा । पिंजरु = पंजर, शरीर ।
साढ़े तीन हाथ = मनुष्य प्रायः ३॥ हाथ के होते हैं अर्थात् ५ फीट
३ इंच । उसारहु = उठाते हो । डेरी = टेढ़ी ।

विशेष—इस पद में नश्वरता का सिद्धान्त बताया गया है । रविदास को अपने चर्मकारत्व पर गर्व था । इसीलिए वे प्रायः अपने को 'रविदास चमारा' कहकर संबोधित करते हैं । आजकल हमारे चमार भाई अपने को चमार कहने में संकोच करते हैं और अपने को रविदास कहते हैं । यह अनुचित है । रविदास एक व्यक्ति का नाम है । वह किसी जाति का नाम नहीं है । वह किसी कुल का गोत्र या प्रवर भी नहीं है । अतः सभी चमारों को अपने को रविदास नहीं कहना चाहिए क्योंकि वे रविदास के समान उच्चकोटि के संत नहीं हैं । रविदास को एक जाति का नाम कहने पर बहुत असंत भी संत रविदास कहलाने लगेंगे और इससे संत रविदास का महत्त्व, विशेषतः उनके नाम का महत्त्व, घटेगा । यदि चमारों को अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए ऐसा करना पड़ता है, तो यह प्रतिष्ठा सस्ती और घातक है । जातिवाद समाप्त करने में ही चमारों की प्रतिष्ठा है । अतः उन्हें अपने को रविदास कहने के बजाय जातिवाद के उन्मूलन में लगाना चाहिए और अपने को जाति से परे मानव कहना चाहिए । सभी मनुष्यों की एक जाति है । वह जाति मानवता है ।

२२

राग सौरठ

चमरटा मांठि न जनई ।
लोगु गठावे पैनही ।१। रहाउ ।
आर नहीं जिह तोपउ ।
नहीं रांबी ठाउ रोपउ ।१।

लोगु गंठि गंठि खरा विगूचा ।

हउ बिनु गांठे जाइ पहुँचा ।२।

रविदासु जपै राम नामा ।

मोहि जम सिउ नाही कामा ।३।

शब्दार्थ—खरा—खड़ा । विगूचा=किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए, असमंजस में पड़ गए । पनही=उपानह, जूता । आर=(Awl) चमड़ा छेदने का सूआ या टेकुआ । राँबी=राँपी, पतली खुरपी के आकार का मोचियों का एक औजार (Shoemaker's knife) । तोपउ=टाँकूँ, या सीऊँ । रोपत=लगाना, बैठाना । गाँठना=मरम्मत करना, फटी हुई चीजों को टाँकना या उनमें चकती लगाना ।

विशेष—रविदास मोची का काम करते थे । उन्हें आर से जूता टाँकना पड़ता था और राँपी से चमड़ा काटकर जूते में लगाना पड़ता था । लोग इस प्रकार आने फटे जूते को रविदास जी से मरम्मत करवाते थे । इस पूरी प्रक्रिया को गाँठना कहते हैं । गाँठना का यहाँ श्लेष से दूसरा अर्थ है संशय, भ्रम या माया की गाँठ या फन्दा या फाँस । रविदास जी मायातीत थे । वे इस आध्यात्मिक गाँठ को नहीं जानते थे । अन्य लोग अपने जीर्ण शरीर या पापी आत्मा की मरम्मत अथवा शुद्धि करते थे । गाँठाने पर भी वे किंकर्तव्यविमूढ़ ही थे । रविदास बिना गाँठने की क्रिया के ही अर्थात् बिना किसी शुद्धीकरण की क्रिया के ही परम तत्त्व तक पहुँच गए ।

धन्ना भक्त की यह उक्ति अतएव अक्षरशः सत्य है—

रविदास दुवंता ढोर नीत तिनि तियागिआ माइआ ।

२३

राग धनाश्री

हम सरि दीनु, दइआलु न तुम सरि अब पतीआरु किआ कीजै ।

बचनी तोर मोर मनु मानै, जन कउ पूरनु दोजै ।१।

हउ बलि बलि जाउ रमईआ कारने ।
 कारन कवन अबोल । रहाउ ।
 बहु जनम बिछुरे थे माधउ, इहु जनमु तुम्हारे लेखे ।
 कहि रविदास आस लगि जीवउ, चिर भइअों दरसनु देखे । २।

शब्दार्थ—सरि = बराबर ।

विशेष—डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त ने अपनी हिन्दू मिस्टिसिज्म नामक पुस्तक में इस पद को रविदास के सिद्धान्त का प्रतिनिधि पद कहा है । आत्म-निवेदन की भक्ति का इसमें वर्णन है । रविदास का यह प्रतिनिधि पद सिद्धान्त-प्रतिपादन के विचार से नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसमें विनय मात्र है । रविदास की भक्ति का वर्णन अन्य पदों में अधिक अच्छा हुआ है ।

इस पद में पुनर्जन्मवाद, दैन्य, आत्म-बलिदान तथा प्रभु-दर्शन की उत्कण्ठा व्यक्त है । यह भी ज्ञात होता है कि पहिले कभी रविदास ने प्रभु का दर्शन किया था । अतएव धना भक्त की रविदास के प्रति यह उक्ति अक्षरशः सत्य है—

परगट्टु होआ साधु संगि हरि दरसनु पाइआ ।

२४

राग धनाश्री

चित सिमरन करौ, नैन अवलोकनो,
 सवन बानी सुजसु पूरि राखिओ ।
 मनुसु मधुकरु करउ, चरन हिरदै धरउ,
 रसन अम्रित राम नाम भाखउ । १।
 मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जिनि घटै
 मै तो मोलि महगी लई जीउ सटै । १। रहाउ ।

साध संगति बिना भाउ नहीं ऊपजै,
भाव बिनु भगति नहीं होइ तेरी ।

कहि रविदास इक बेनती हरि सिउ,
१पैज राखहु राजाराम मेरी ।२।

शब्दार्थ—जौउ सटै = जीअ सटै = प्राणों के मोल या बदले में । पैज = टेक ।
अवलोकनो = अवलोकन करना, देखना । पूरि राखिओ = भर लूँ ।
रसन = रस ॥, जिह्वा ।

पाठभेद—१ गुरुपरसाद कृपा करो मेरी ।

तुलनीय पद—बैन वही, उनको गुन गाइ,
ओ कान वही, उन बैन सों सानी ।
हाथ वही, उन गात सरै,
अरु पाय वही, जु वही अनुजानी ।
जान वही, उन प्रान के संग,
ओ मान वही, जु करै मनमानी ।
त्यों रसखानि वही रसखानि,
जु है रसखानि, सो है रसखानी । रसखान ।

तथा—बिनु सतसंग विवेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।
सतसंगब मुदमंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन मूला ।

—तुलसीदास (रामचरित मानस)

और—सब कर फल हरि-भगति सुहाई । सो बिनु संत न काहूँ पाई ।
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा । राम भगति तेहि सुलभ विहंगा ।
(वही उत्तरकाण्ड ११६ दोहे के बाद)

२५

राग धनाश्री

नामु तेरो आरतिभंजनु मुरारे ।

हरि के नाम बिनु भूटे सगल पासारे ।१।रहाउ।

नामु तेरो आसनो नाम तेरो उरसा,
 नामु तेरा केसरो ले छिटकारे ।
 नाम तेरो अंभुला नाम तेरो चंदन,
 घसि जपे नामु ले तुम्हहि कउचा रे ।१।
 नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती,
 नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे ।
 नाम तेरे की जोति लगाई,
 भइओ उजियारो भवन सगला रे ।२।
 नामु तेरो तागा नामु फूल माला
 भार अठारह सगल जूठारे ।
 तेरो कीआ तुम्हहि किआ अरपउ,
 नामु तेरा तुही चवर ढोलारे ।३।
 दसअठ अठसठे चारे खानी,
 इहै बरतनि है सगल संसारे ।
 कहै रविदासु नामु तेरो आरती
 सति नामु है हरि भोग तुहारे ।४।

शब्दार्थ—पासारे = संसार । अंभुला = जल । भार = लोक, १८ लोक हैं;
 दसअठा = १८ । अठसठे = ६८

विशेष—रविदास नाम के भक्त थे । जैसा तुलसीदास ने कहा यह नाम तत्त्व
 निर्गुण और सगुण के परे है—
 अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी ।
 उभय प्रबोधक चतुर दुभासी ।

रामचरित मानस बालकाण्ड दोहा २० के बाद

और—निरगुन तेँ एहि भाति बड़ नाम प्रभाउ अपार ।
 कहहुँ नामु बड़ राम तेँ निज विचार अनुसार । वही दोहा २१।

और—अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा ।
मोरें मत बड़ नामु दुहैं तें । किए जेहि जुम निजबस निजबूते ।

वही दोहा २२ के बाद ।

२६

राग गूजरी

१दुधू त बछरै थनहु विटारिओ ।
फूल भवरि, जलु मीनि विगारिओ ।१।
२माई गोबिंद पूजा कहा लै चरावउ ।
३अवरु न फूलु अनूपु न पावउ ।१। रहाउ ।
मैलागर बे रेहै भुइअंग ।
विखु अंम्रित बसहि इक संग ।२।
धूप दीप नइवेदहि बासा ।
कैसे पूज करहि तेरी दासा ।३।
तनु मनु अरपउ पूज चरावउ ।
गुरपरसाहु निरंजनु पावउ ।४।
पूजा अरचा आहि न तोरी ।
कहि रविदास कवन गति मोरी ।५।

पाठभेद—१थनहर दूध जो बछरु जुठारी । २राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ ।
३फल अरु फूल अनूप न पाऊँ । इस पद में ३ के स्थान पर यह
पाया जाता है ।

मन ही पूजा मन ही धूप । मन ही सेऊँ सहज सरूप ।

शब्दार्थ—विटारिओ=जूठा कर दिया । भवरि=भ्रमर ने । चरावउ=
चढ़ाऊँ । मैलागर=मलयागिरि चंदन । बेरहै=लिपटे हैं ।
भुइअंग=भुजंग, साँप । बासा=सूँघ लिया है । पूज=पूजा ।

विशेष—इस पद में मानसिक पूजा बतलाई गई है ।

२७

राग आसा

म्रिग मीन म्रिम पतंग कुंचर एक दोख विनास ।
 पंच दोख असाध जामहि ताकी केतक आस ।१।
 माधो अबिदिआ हित कीन ।
 बिबेक दीप मलीन ।१।रहाउ।
 १त्रिगद जोनि अचेत संभव पुन पाष असौच ।
 मानुखा अवतार दुलभ तिही संगति पोच ।२।
 जीअ जंत जहा जहा लगु करम के बसि जाइ ।
 काल-फास अबध लागे कछु न चलै उपाइ ।३।
 रविदास दास उदास तजु भ्रमु तप न तपु गुर गिआन ।
 भगत जन भैहरन परमानन्द करहु निदान ।४।

शब्दार्थ—म्रिग = मृग, हिरण । म्रिग = भृंग, भौरा । कुंचर = कुंजर, हाथी ।
 त्रिगद जोनि = तिर्यक योनि, पशु तथा कीड़े-मकोड़े की योनि ।

तुलनीय पद—शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च
 पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः ।
 कुरङ्गमातङ्गपतङ्गमीन—
 भृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ।

विवेकचूडामणि श्लोक सं० ७८

पाठभेद—१त्रिगुन (सत्त्व, रज, तम तीन गुण हैं)

विशेष—१. मृग श्रवणेन्द्रिय का दास है । प्रसिद्ध है कि वीणा बजाने से मृग वीणा-वादक के पास आ जाते हैं । उस समय वे इतने स्वर-मुग्ध रहते हैं कि अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं और आखेटक उनको सहज ही मार डालते हैं । २. मीन रसनेन्द्रिय का दास है । जल में कोई खाने की वस्तु फेंकने से मीन उसे खाने लगता है । इस प्रकार कटुए

से मीन पकड़े जाते हैं । ३. भृंग श्रवणोन्द्रिय का दास है । वह सुगंध के वशीभूत होकर कमल के कोष में बंध जाता है । उस समय उसे कोई भी पकड़ सकता है । ४. पतङ्ग चक्षुरिन्द्रिय का दास है । प्रकाश देखते ही वह उसके पास चला जाता है और जलकर भस्म हो जाता है । ५. हाथी की त्वगिन्द्रिय दुर्बल होती है । उसके सूँड़ में चींटी ऐसा क्षुद्र जीव घुसते ही उसे मार डालता है ।

२८

राग आसा

संत तुम्ही तनु संगति प्रान ।
 सतिगुर गिआन जानै संत देवादेव ।१।
 संतची संगति संतकथा-रसु ।
 सन्त प्रेम माभै दीजै देवादेव ।१। रहाउ ।
 संत आचरण संत चो मारगु संत च ओल्हग ओल्हगणी ।२।
 अवरु इक मागउ भगति चितामणि ।
 जणी लखावहु असन्त पापी सणि ।३।
 रविदास भगौ जो जाणौ सो जाणु ।
 सन्त अनंतहि अंतरु नाही ।४।

शब्दार्थ—ची = की । माभै = मुझे । चो = का । ओल्हग = ओल, क्रोड़, ओट, शरण । ओल्हगणी = ओढ़नी ।

विशेष—सन्त और अनन्त परम तत्त्व में अभेद सम्बन्ध है ।

तुलनीय पद—(१) जानेसु सन्त अनन्त समाना—

तुलसीदास—रामचरित मानस उत्तरकाण्ड

(२) साईं सरीखे सन्त हैं यामे मीन न मेख—

गरीबदास जी की की बानी पृ० ८७

(३) सन्त ओ राम कौ एक कै जानियै, दूसरा भेद ना तनिक
 आनै—पल्टू साहब की बानी पृष्ठ ८

२६

राग भासा

तुम चंदन हम इरंड बापुरे, संगि तुमारे बासा ।
 नीच रुख ते ऊच भए हैं, गंध सुगंध निवासा ।१।
 माधउ, सतसंगति सरनि तुम्हारी ।
 १हम भवगुन तुम्ह उपकारी ।१। रहाउ ।
 २तुम मखतूल सुपेद सपोमल, हम बापुरे जस कीरा ।
 सतसंगति मिलि रहीअैं, माधउ जैसे मधुपमखीरा ।२।
 जाती ओछा पाती ओछा ओछा जनमु हमारा ।
 ३राजाराम की सेव न कीन्ही कहि रविदास चमारा ।३।

शब्दार्थ—इरंड = एरण्ड, रेंड । रुख = वृक्ष । मखतूल = रेशम । सुपेद

सपोमल = शुभ्र श्वेत । मधुप-मखीरा = मधुमक्खी ।

पाठभेद—१जग जीवन क्रिस्न मुरारी ।

२तुम मखतूल चतुर्भुज ।

३हम रैदास रामराई को, कह रैदास बिचारा ।

छठीं पंक्ति के स्थान पर यह पंक्ति भी पाई जाती है—

पीवत डाल फूल फल भ्रमिंत, सहज भई मति हीरा ।

विलेख—भगवान् चंदन हैं भक्त एरण्ड है । दोनों की योनि वृक्षत्व या परम तत्व है जो आत्मस्वरूप है । एरण्ड सुगंधहीन है । चंदन सुगंध का घर है । एरण्ड में भी चंदन के नेकट्य से सुगंध आ जाती है । इस प्रकार चंदन-स्वरूप भगवान् गुणी एवं उपकारी हैं और एरण्ड-स्वरूप भक्त भवगुण का आगार है । भगवान् रेशम-से शुभ्र श्वेत हैं । तद्-विपरीत भक्त सर्प-सा कृष्ण है । एक सभी वर्णों का समुच्चय है तो दूसरी सबका प्रभाव । अतएव भगवान् सब कुछ हैं और भक्त कुछ नहीं है ।

इस पद में सतसङ्ग की महिमा का वर्णन है ।

३०

राग आसा

कहा भइओ जउ तनु भइओ छिनु छिनु ।
 प्रेम जाइ तउ डरपै तेरो जन ।१।
 तुमहि चरन अरबिद भवन मनु ।
 पान करत पाइओ पाइओ रामईआ धनु ।१। रहाउ ॥
 संपति बिपति पटल माइआ धनु ।
 तामहि मगन होत न तेरो जनु ।२।
 १प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन ।
 कहि रविदास छूटिबो कवन गुन ।३।

पाठभेद—१प्रेमरजा लै राखो हृदे धरि ।

शब्दार्थ—कहा—छिनु = क्या हुआ यदि शरीर क्षणिक है । भवन = भँवर ।
 पटल = आवरण । गुन = योग्यता के द्वारा ।

विशेष—इस पद में भक्त या सन्त के लक्षण कहे गए हैं । १. भक्त शरीर की क्षणभंगुरता से नहीं डरता है । प्रत्युत वह भगवत्प्रेम के घटने से डरता है । २. माया और धन में वह लिप्त नहीं होता है । ३. भगवान् मात्र पर ध्यान लगाता है । यहाँ तक कि उन्हें प्रेम की रस्सी से सदा बांधे रहता है ।

तुलनीय पद—धीरौ मेरे मनवाँ तोहि धरि टांगौ,

तैं तो कियो मेरे खसम सौँ स्वांगौ ।

प्रेम की जेवरिया तेरे गले बांधू, तहाँ लै जाउँ जहाँ मेरे माधौ ।

काया नगरी पैसि किया मैं वासा,

हरि रस छोड़ि दिषै-रस माता ।

कहै कबीर तन मन का ओरा, भाव भगति हरि सौँ गँठजोरा ।

‘कबीर’ (हजारी प्रसाद) पृ० ७६

३१

राग आसा

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे
हरि सिमरत जन गए निसतरि तरे ।१। रहाउ ।
हरि के नाम कबीर उजागर ।
जनम जनम के काटे कागर ।१।
निमत नामदेउ दूधु पीआइआ ।
तउ जग जनम संकट नही आइआ ।२।
जन रविदास राम रंगिराता ।
इउ गुरपरसादि नरक नहीं जाता ।३।

शब्दार्थ—निसतरि तरे = निस्तार पा गए, मुक्त हो गए ।

विशेष—(१) कबीर हरि का नाम लेते हुए तर गए । अनेक जन्मों के पाप को उन्होंने मिटा दिया ।

(२) नामदेव के बारे में प्रसिद्ध है कि बाल्यावस्था में एक बार इनके पिता घर में रखी हुई भगवान् की मूर्ति को भोग लगाने को सौंप कर आवश्यक कार्यवश बाहर गए थे । बालक नामदेव ने कटोरे में दूध भर कर भोग लगाया । जब उन्होंने देखा कि मूर्ति दूध नहीं पी रही है तो वे रुठे और समझे कि मेरी क्षुद्रता के कारण भगवान् दूध नहीं पी रहे हैं । अन्त में मूर्ति ने इनके हाथ से दूध पी लिया ।

कबीर और नामदेव विषयक इन अलौकिक चमत्कारों को रविदास सन्त सत्य मानते थे । रविदास को अपने विषय में भी ज्ञात था कि वे मुक्त थे और नरक नहीं जायेंगे ।

३२

राग आसा

माटी को पुतरा कैसे नचतु है ।
देखै देखै सुनै बोलै दउरिओ फिरतु है ।१। रहाउ ।

जब कछु पावै तब गरब करतु है ।
 माइआ गई तब रोवनु लगतु है ।१।
 मन बच क्रम रस कसहि लुभाना ।
 बिनसि गइआ जाइ कहै समाना ।२।
 कहि रविदास बाजी जगु भाई ।
 बाजीगर सउ मोहि प्रीति बनि आई ।३।

शब्दार्थ—माटी को पुतरा = मनुष्य का शरीर जो मिट्टी का बना है । माइआ = माया ।

विशेष—मानव जीवन में भगवत्प्रीति ही सार-वस्तु है । शेष सम्पूर्ण वस्तुएँ निस्सार हैं । मनुष्य को रविदास के अनुसार भक्ति के अतिरिक्त किसी वस्तु को सार नहीं जानना चाहिए ।

३३

श्री राग

तोही मोही, मोही तोही, अंतरु कैसा ।
 कनक कटिक, जल तरंग जैसा ।१।
 जउ पै हम न पाप करता, अहे अनंता ।
 पतित पावन नामु कैसे हुँता ।१। रहाउ ।
 रतुम्ह जु नाइक आछहु अंतरजामी ।
 प्रभ ते जनु जानीजै, जन ते सुआमी ।२।
 ३सरीरु अराधै ४मोकउ बीचारु देह ।
 रविदास समदल समभावै कोऊ ।३।

पाठभेद—१ ऐसा । २ मैं केई बर तुहि अंतरजामी ।

३ तुम सबन में सब तुम माछी

रैदास दास असमझि सी कहौं कहाँ हीं ।

४ बीकउ ।

शब्दार्थ—कनक-कटिक = स्वर्ण तथा स्वर्ण के कंकण में । आछहु = हो ।
 प्रभ = प्रभु, स्वामी । सम = बराबर । हुँता = होता । बीकउ =
 बीका, वक्र, टेढ़ा । दल = किसी वस्तु के उन दो सम खंडों में से एक
 जो एक दूसरे से स्वभावतः जुड़े हुए हों, पर जरा सा दबाव पड़ने से
 अलग हो जायें । यहाँ पर प्रभु और जन दो सम दल हैं । अर्थात्
 बराबर के दल हैं जो वस्तुतः जुड़े हुए हैं पर मायावद्ध जीव को
 अलग-अलग दीखते हैं ।

विशेष—इस पद में समदल का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है । भक्त तथा
 भगवान् एक चने की दो दाल हैं जो अलग नहीं प्रत्युत एक ही चने में
 वर्तमान हैं । यही चना परम तत्त्व है ।

३४

राग भौरी

१मेरी संगति पोच सोच दिन राती ।
 मेरा करम-कुटिलता जनमु कुभाँती ।१।
 राम गुसइआ जीउ के जीवना ।
 मोहि न बिसारेहु मैं जनु तेरा ।१। रहाउ ।
 ३मेरी हरहु बिपति जन करहु सुभाई ।
 चरण न छाडउ सरीर कल जाई ।
 २कहि रविदास परउ तेरी सामा ।
 बेगि मिलहु जनि करि बिलांभा ।३।

पाठभेद— १ सकट सोच पोच दिन राती । करम कठिन मोरि जाति कुजाती ।

रामा हो जग जीवन मेरा । तू न बिसारि मैं जन तोरा । टेक ।

२ कहि रविदास कछु देहु अवलम्बन ।

हरहु बिपति भावै करहु सो भाव ।

शब्दार्थ—पोच = तुच्छ । कुभाँती = कुजाति । गुसइआ = स्वामी । बिलांभा =

विलम्ब, देर । बेगि = शीघ्र । कल = मले कल ही ।

३५

राग गौरी

बेगमपुरा सहर को नाउ ।
 दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ ।
 नांतसवीस खिराजुन मालु ।
 खउफु न खता न तरसु जवालु ।१।
 अब मोहि खूब वतन गह पाई ।
 ऊहां खैरि सदा मेरे भाई ।१। रहाउ ।
 काइमु दाइमु सदा पातिसाही ।
 दो मन सेम एक सो आही ।
 आबादानु सदा मसहूर ।
 ऊहां गनी बसहि मामूर ।२।
 तिउ तिउ सैलि करहि जिउ भावै ।
 महरम महिलन को अटकावै ।
 कहि रविदास खलास चमारा ।
 जो हमसहरी सो मीतु हमारा ।३।

पाठभेद—अब हम खूब वतन घर पाया । ऊंचा खेर सदा मेरे भाया ।टेक।
 बेगमपुर सहर का नाम । फिकर अंदेस नहीं तेहि ग्राम ॥१॥
 नहि जहँ साँसत लानत मार । हैफ न खता न तरस जवाल ॥२॥
 आव न जान, रहम औजूद । जहाँ गती आप बसै माबूद ॥३॥
 जोई सैलि करै सोई भावै । महरम महल में को अटकावै ॥४॥
 कह रैदास खलास चमारा । जो उस सहर सो मीत हमारा ॥५॥

तुलनीय पद—देखिए कबीर की ये पंक्तियाँ—

सहर बेगमपुरा गम्म को ना लहै ।
 होय बेगम्म जो गम्म पावै ।
 गुना की गम्म ना अजब बिसराय है ।
 सैन जो लखै सोइ सैन गावै ।

“कबीर” (हजारी प्रसाद द्विवेदी) पृष्ठ २४७

शब्दार्थ—खेर=खेड़ा, गाँव । बेगमपुर=वह नगर जहाँ दुख न हो । अँदेस=भय । साँसत=पीड़ा । लानत=भर्त्सना । हैफ=अफसोस । खता=धोखा, चूक । तरस=त्रास, कष्ट पहुँचाना । जवाल=झंभट । औजूद=वजूद, अस्तित्व । गनी=धनी । माबूद=पूज्य, इष्टदेव । सैलि=मौज, आनंद, तमाशा । महरम=असली भेद का जानने वाला, रहस्य से सुपरिचित ।

विशेष—आचार-शास्त्र की दृष्टि से बेगमपुर अर्थात् दुःखहीन मानवता की अवस्था ही साध्य है । रविदास इस अवस्था में रहते हैं । जो बेगमपुर का नागरिक है वही उनका मित्र है ।

३६

राग गौरी

घट अवघट झूगर घणा इकु निरगुणु बैल हमार ।
रमईए सिउ इक बेनती मेरी पूंजी राखु मुरारि ।१।
को बनजारो राम को, मेरा टांडा लादिआ जाइरे ।१।रहाउ।
हउ बनजारो राम को, सहज करउ ब्यापार ।
मै राम-नामु धन लादिआ, विखु लादो संसारि ।२।
उर वारपार के दानीआ, लिखि लेहु आल पतालु ।
मोहि जमडंडु न लागई तजीले सरब जंजाल ।३।
जैसा रंगु कसुंभ का, तैसा इहु संसार ।
मेरे रमईए रंग मजीठ का, कहु रविदास चमार ।४।

पाठभेद—इस पद में ये पंक्तियाँ भी पाई जाती हैं—

अंते ही धन धरयो रे, अंते हि हूँढ़न जाइ रे ।
अनत को धरो न पाइये, तांते चाल्यो मूल गँवाइ रे ।
रैन गंवाई सोइ करि, दिवस गंवायो खाइ रे ।
हीरा यह तन पाइ करि, कौड़ी बदले जाइ रे ।

साधु संगति पूंजी भई रे, वस्तु भई निर्मोल रे ।

सहज बरदवा लादि करि, चहुँ दिखि टाँडो मोल रे ।

शब्दार्थ—घट = घड़ा, शरीर । अवघट = दुर्गम, कठिन । बनजारा = व्यापारी, वह व्यक्ति जो बैलों पर अन्न लादकर बेचने के लिए एक देश से दूसरे देश को जाता है । टाँडा = अन्नादि व्यापार की वस्तुओं से लदे हुये पशुओं का झुण्ड जिसे व्यापारी लेकर चलते हैं । विखु = विषया । डुगर = हूँगर, टीला । वार-पार = नदी आदि का यह किनारा और वह किनारा, यह छोर और वह छोर, इस छोर से उस छोर तक । आर-पार का भी अर्थ वार-पार होता है । पारावार का भी वही अर्थ है । दानीआ = दानीय, कर संग्रह करने वाला, महसूल उगाहने वाला । आल-पताल = भंभट, बखेड़ा । कसुंभ = कुसुंभ, केसर जिसका वर्ण पीला होता है । मजीठ = मंजिष्ठा, यह एक प्रकार की लता है जिसकी जड़ और डंठलों से लाल रंग निकलता है । रमईए = राम ।

विशेष—इस पद से रविदास-कालीन व्यापार की दशा का पता चलता है । भक्त रविदास तो सहज का व्यापार निर्गुण बैल पर राम-धन लादकर करते हैं ।

३७

राग गौरी

कूपु भरिओ जैसे दादिरा, कछु देसु बिदेसु न बूझ ।
ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ, कछु आरापाइ न सूझ ।१।
सगल भवन के नाइका, इकु छिनु दरसु दिखाइ जी ।१। रहाउ ।
मलिन भई मति माधवा, तेरी गति लखि न जाइ ।
करहु क्रिपा भ्रमु चूकई मै, सुमति देहु समझाइ ।२।
जोगीसर पावहि नही, तुम्ह गुण कधनु अपार ।
प्रेम भगति के कारणौ कहु रविदास चमार ।३।

शब्दार्थ—कूपु भरिओ जैसे दादिरा = कूप के अन्दर दादुर, कूप-मण्डूक ।

बिखिआ = विषया । आरापारु = आर-पार; दोनों तट । मै = मुझे ।

विशेष—आश्चर्य से दर्शन का उद्भव होता है । रविदास जी संसार की गति-विधि को समझने का प्रयत्न करते हैं पर उन्हें मति मलीन मालूम पड़ती है और आपाततः आश्चर्य ही करना शेष रह जाता है ।

३८

राग गौरी

सत जुगि सतु, तेता जगी, दुआपर पूजाचार ।
 तीनौ जुग तीनौ दिड़े, कलि केवल नाम अधार ।१।
 १पारु कैसे पाइबो रे ।
 मो सउ कोऊ न कहै समझाइ ।
 जाते आवागवनु विलाइ ।१।रहाउ॥
 बहु बिधि धरम निरूपीअ, करता दौसे सभु लोइ ।
 कवन करम ते छुटीअ जिह साधे सभ सिधि होइ ।२।
 करम अकरम बीचारीअ संका सुनि बेद पुरान ।
 संसा सदा हिरदै बसे कउनु हिरे अभिमानु ।३।
 बाहर उदकि पखारीअ घट भीतर बिबिध बिकार ।
 सुघर कवन पर होइबो सुच कुंचर बिधि बिउहार ।४।
 ३रवि प्रमास रजनी जथा, गति जानत सभ संसार ।
 पारस मानो ताबो छूए, कनक होत नही बार ।५।
 परम पुरस गुरु भेटौअ, पूरब लिखित ललाट ।
 उनमन मन मनही मिले, छुटकत बजर कपाट ।६।
 भगति जुगति मति सति करी, भ्रम बंधन काटि बिकार ।
 सोई बसि रसि मन मिले गुन निर्गुन एक बिचार ।७।
 अनिक जतन निग्रह कीए, टारी न टरै भ्रम फास ।
 प्रेम भगति नही ऊपजै ताते रविदास उदास ।८।

तुलनीय पद—कृतजुग सब जोगी विग्यानी ।

करि हरि ध्यान तरहि भव प्रानी ।

त्रेतां विविध जग्य नर करहीं ।

प्रभु हि समर्पि कर्म भव तरहीं ।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा ।

नर भव तरहि उपाय न दूजा ।

कलिजुग केवल हरिगुन गाहा ।

गावत नर पावहि भव थाहा ।

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना ।

एक अधार राम गुन गाना ।

(रामचरित मानस उत्तरकाण्ड १०२वें दोहे के बाद)

पाठभेद—१ मरम । २ सुची । ३ रवि प्रगास रजन जथा ।

ये पंक्तियाँ भी इस पद में पाई जाती हैं—

धन जोबन हरि ना मिलै, दुख दारुन अधिक अपार ।

एकै एक बियोगियाँ, ता को जानै सब संसार ।

शब्दार्थ—रवि प्रगास रजन जथा = मृग मरोचिका जैसे । पारस-बार = ताँबा पारस छूने से बार भर भी सोना नहीं होता है । लेकिन लोहा तुरंत सोना हो जाता है । उन्मन = उन्मनी की वह दशा जिसमें चित्त की वृत्तियाँ सदा परमात्मतत्त्व में ही लगी रहती हैं । । अति चेतना, तन्मनस्कता । उन्मनी वह क्रिया है जिसमें नाक की नोक पर दृष्टि गड़ाई जाती है ।

३६

राग केदारा

१खटु करम कुल संजुगतु है; हरि-भगति हिरदै नाहि ।

चरनारविद न कथा भावै, सुपल तुलि समानि । ।

रे चित चेति चेत अचेत ।
 काहे न बालमीकहि देख ।
 २किसु जाति ते किह पदहि अमरिओ राम भगति बिसेख ।१।रहाउ।
 ३सुआन सत्रु अजातु सभते क्रिस्न लावे हेतु ।
 ४लोगु बपुरा किआ सराहै तीनि लोक प्रवेस ।२।
 ५अजामलु पिगुला लुभतु कुंचरु गए हरि कै पास ।
 ऐसे दुरमति निसतरे तू किउ न तरहि रविदास ।३।

शब्दार्थ—खटु करम = यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान लेना और दान देना । सुपल = श्वपच, डोम । सुआन सत्रु = श्वान-शत्रु, डोम ।

१—बाल्मीकि—रामायण के रचयिता ऋषि बाल्मीकि पहले जङ्गल में जीव-जन्तुओं को मार कर जीवन-यापन करते थे । पश्चात् उलटा राम का नाम जपते हुये अर्थात् 'मरा मरा' जपते हुये वे महर्षि हो गए ।

२—अजामिल—एक पापी ब्राह्मण था जो मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' का नाम पुकारने से तर गया ।

३—पिगुला—गज ।

४—गज—प्रसिद्ध है एक बार किसी गज को ग्राह ने दबोच लिया था । उस समय उसने हरि-स्मरण किया । भगवान् ने उसको मुक्त कर दिया ।

पाठभेद—१ खटक्रम सहित जे बिप्र होते, हरि भगति चित दृढ़ नाहि रे ।

२ जाति ते कोई पद नाहि पहुँचा, राम भगति बिसेख रे ।

३ मित्र शत्रु अजात सब ते, अंतर लावे हेत रे ।

४ लाग वांकी कहाँ जानै, तीन लोक पवेत रे ।

५ अजामिल गज गनिका तारी. काटी कुंजर की पास रे ।

विशेष—इस पद में जातिगत कर्म की भगवान् के समक्ष व्यर्थता, राम-भक्ति की विशेषता तथा पुराणों को आप्त बचन मानना, मुक्त लोगों के जीवन से प्रेरणा-प्राप्ति आदि का चित्रण है ।

४०

अब कैसे छूटे नाम रट लागी । टेक ।
 प्रभु जी तुम चंदन हम पानी ।
 जाकी अंग अंग बास समानी ।१।
 प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा ।
 जैसे चितवत चंद चकोरा ।२।
 प्रभु जी तुम दीपक हम बाती ।
 जीकी जोति बरै दिन राती ।३।
 प्रभु जी तुम मोती हम धागा ।
 जैसे सोनहि मिलत सोहागा ।४।
 प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा ।
 ऐसी भक्ति करे रेदासा ।५।

विशेष—भक्त तथा भगवान् का मयूर-मेघ, चकोर-चन्द्र तथा वत्तिका-दीपक सम्बन्ध २०वें पद में बताया जा चुका है । प्रस्तुत पद में दो अन्य उदाहरणों से रविदास भक्त-भगवान् का सम्बन्ध व्यक्त करते हैं । भगवान् सुगंध चन्दन हैं तो भक्त गंधहीन जल है । चंदन की उपयोगिता जल के सहवास से ही होती है । पिसा हुआ चन्दन चन्दन-काष्ठ तथा जल का मिश्रण है । प्रभु जी वस्तुतः पिसे हुए चंदन हैं । भक्त उसका जलांश है जिसके अंग-प्रत्यंग में चंदन स्वरूप भगवान् का बास है । प्रोफेसर रानडे ने इस उदाहरण को उपादान कारण (Material Cause) कहा है । भगवान् भक्त के उपादान कारण हैं अर्थात् भक्त-भगवान् पट-सूत की भाँति संबद्ध हैं । पिसे हुए चंदन के लिए ही चंदन काष्ठ तथा जल प्रयोग में लाए जाते हैं । अतएव वह भक्त का अन्तिम कारण (Final Cause) है ।

रविदास भक्त स्वयं को धागा और भगवान् को मोती कहते हैं जो गीता के अनुसार विपरीत है । देखिए

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय ।

मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव ।

प्रोफेसर रानडे का कहना है कि भगवान् का अस्तित्व भक्त के अस्तित्व पर ही निर्भर है । मूल्यवान् पदार्थ होते हुए भी मोती धागे के अभाव में व्यर्थ है क्योंकि उसकी उपयोगिता माला के रूप में ही है । इसी प्रकार भगवान् भक्त के अस्तित्व से ही वर्तमान हैं । प्रोफेसर रानडे इसे विपरीत सर्वाङ्गिता (Inverted Immanence) कहते हैं ।

४१

राग टोड़ी

पावन जस माधो तेरा, तुम दारुन अधमोचन मेरा । टेक ।

कीरति तेरी पाप बिनासे, लोक बेद यों गावै ।

जौ हम पाप करत नहि भूधर, तौ तूँ कहा नसावै ।१।

जब लग अंक पंक नहि परसै, तौ जल कहा पखारै ।

मन मलीन विषया रस लंपट, तौ हरि नाम संभारै ।२।

जो हम बिमल हृदय चित अंतर, दोष कौन पर धरिहौ ।

कह रैदास प्रभु तुम दयाल हौ, अवैध मुक्त का करिहौ ।३।

शब्दार्थ—जो — भूधर = पहाड़ के बराबर यदि हम पाप नहीं करते । अंक = क्रोड, गोद । पंक = कीचड़ । अवैध = वह व्यक्ति जो माया के बंधन में न हो, असङ्ग ।

विशेष—महात्मा राम चरण कुरील ने इस पद में यह अन्तर्कथा निकाली है कि रविदास को पण्डे लोगों ने काशी-नरेश के दरबार में कुचाल चलने का अपराधी ठहराया । पर काशी नरेश ने न्यायपूर्वक रविदास को छोड़ दिया (देखिए रविदास महिमा पृष्ठ ३४) । पर कुरील जो की यह खींचासानी है । इस पद में कोई अन्तर्कथा नहीं है । इसमें आत्मा की अवैधता अथवा असङ्गता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया

गया है । लौकिक उदाहरणों द्वारा रविदास ने इसे समझाने का प्रयास किया है । भगवान् दयालु हैं पर उनकी दयालुता का भक्त के लिए कोई उपयोग नहीं है क्योंकि भक्त तो स्वयं अबन्ध, मुक्त या असङ्ग है । यदि वह बन्धन में होता तो फिर प्रभु की दयालुता बाँछनीय होती । निजात्मतत्त्व को जानकर लोग अबन्ध हो सकते हैं ।

तुलनीय पद—असङ्गः पुरुषः प्रोक्तो बृहदारण्यकेऽपि च ।

अनन्तमलसंश्लिष्टः कथं स्याद्देहकः पुमान् ।

अपरोक्षानुभूति ३६ ।

असङ्गो ह्ययं पुरुषः बृ० उप० ४।३।१५

कार्यकारणमूर्तैः संश्लेषो मूर्तस्य, स तु क्रियाहेतु दृष्टः न ह्यमूर्तः कश्चित्क्रियावान् दृश्यते । अमूर्तश्चात्मा, अतोऽसङ्गः ।

....अत एव न क्रियाकर्तृत्वमस्य कथंचिदुपपद्यते । कार्यकारण संश्लेषेण हि कर्तृत्वं स्यात्स च संश्लेषः संगोऽस्य नास्ति यतोऽसङ्गो ह्ययं पुरुषः । बृ० ४।३।१५ पर शाङ्करभाष्य ।

आत्मा को शङ्कराचार्य जी ने नित्यशुद्धमुक्तस्वभाव कहा है ।

४२

राग आरती

आरतौ कहाँ ली जोवै ।

सेवक दास अचंभो होवै । टेक ।

वावन कंचन दीप धरावै ।

जड़ बैरागी दृष्टि न आवै । १।

कोटि भानु जाकी सोभा रौमै ।

कहा आरती अगनी होमै । २।

पांच तत्व तिरगुनी माया ।

जो देखै सो सकल समाया ।३।

कह रैदास देख हम माहीं ।

सकल जोति रोम सम नाहीं ।४।

शब्दार्थ—आरती = नीराजन । जोवै = देखूँ । वावन = बामन, बौना आदमी ।
कंचन-दीप = स्वर्ण-दीपक । कोटि भानु = अनंत सूर्य । रौमै = रूमें,
भूमते या भूलते हैं । पांच तत्त्व = १ पृथ्वी, २ जल, ३ तेज या अग्नि
४ वायु और ५ आकाश पांच तत्त्व कहे जाते हैं । माया = प्रकृति ।
तिरगुनी = त्रिगुणात्मिका— सत्त्व, रज और तम तीन गुण हैं जिनकी
सःम्यावस्था का नाम प्रकृति है । यही प्रकृति रविदास की माया है ।
आत्मतत्त्व को छोड़कर सम्पूर्ण संसार तीन गुणों और पांच तत्त्वों
की सृष्टि है । पुरुष इन तत्त्वों और इनके विकार से भिन्न है । सांख्य
के अनुसार पुरुष को छोड़कर २४ तत्त्व हैं । पुरुष पचीसवाँ तत्त्व
है । यही पुरुष सत्य तथा चिरन्तन हैं । २४ तत्त्व नश्वर एवं
क्षणभंगुर हैं ।

विशेष—भगवान् के विराट स्वरूप की आरती मनुष्य कैसे कर सकता है ?
अर्थात् मनुष्य नहीं कर सकता है । वह नहीं देखता कि उसकी आरती
विराट स्वरूप पुरुष की स्वनिर्मित शाश्वत आरती के सामने कितनी
तुच्छ है ।

तुलनीय पद—दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।

यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ।

गीता ११।१२

नोट—रविदास तथा अन्य संत दीपक जलाकर आरती नहीं करते थे । उनकी
आरती विराट स्वरूप पर ध्यान एकाग्र करना थी । मनुष्य की
असमर्थता तथा उस विराट् पुरुष की सर्वशक्तिमत्ता और सर्व व्यापक-
ता ही आरती का विषय था । इस अर्थ में आरती एक पारिभाषिक
शब्द है ।

४३

है सब आत्म सुख परकास साँचो ।

निरंतर निराहार कलपित ये पाँचो । टेक ।

आदि मध्य औसान एक रस, तार बन्यो हो भाई ।

थावर जंगम कीट पतंगा, पूरि रह्यो हरिराई । १।

सर्वेश्वर सर्वांगी सबगति, करता हरता सोई ।

सिव न असिव, न साध अस सेवक, उनै भाव नहि होई । २।

धरम अधरम मोच्छ नहि बंधन, जरा मरन भव नासा ।

दृष्टि अदृष्टि गेय अरु ज्ञाना, एकमेक रेदासा ।

शब्दार्थ—आत्म सुख = आत्मानन्द, आत्मा में लीन होने का सुख । परकास = प्रकाश, तेज । निरन्तर = अविच्छिन्न, जो बराबर चला गया हो । निराहार = जो भोजन न करता हो । निरंतर और निराहार आत्म-तत्त्व के विशेषण हैं । कलपित = बनावटी, झूठा । पाँचो = पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ तथा उनके विषय । अवसान = अन्त । एकरस = जो सदा एक प्रकार का रहे । थावर = स्थावर । पूरि रह्यो = वर्तमान हैं । सबगति = सर्वगति, जिनकी गति सब में है । करता = कर्त्ता, भगवान् ही वस्तुतः सब कुछ करने वाले हैं । हरता = हर्ता, छीनने वाले, नाश करने वाले । सिव = शिव, मंगलकारी । असिव = अशिव, अमंगलकारी । भाव = विकार । धरम = धर्म, कर्त्तव्य । अधरम = अधर्म, अकर्त्तव्य । दृष्टि = दृश्यमान जगत् । अदृष्टि = अदृश्यमान । इसी को क्रमशः बृहदारण्यकोपनिषद् में सत् तथा त्यत् कहा गया । वृ० २।३।१। इसी को क्रमशः मूर्त तथा अमूर्त कहा गया ।

गेय = ज्ञेय, ज्ञान का विषय । एकमेक = एक ही हैं ।

विशेष—यह पद अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त का पोषक है । इसमें सबसे पहिले परमात्म-तत्त्व बताया गया जिसे वेदान्ती ब्रह्मन् या आत्मन् कहते हैं । फिर ब्रह्म के दो रूप बताये गए और अन्त में दोनों को एक कहा

गया । इस प्रकार ब्रह्म तथा ईश्वर को एक ही कहा गया है । आपा-
ततः ज्ञेय और ज्ञान की एकता बताकर विज्ञानवाद (Idealism)
प्रदर्शित किया गया है । दो ईश्वर या ब्रह्म के सिद्धान्त का यहां
खण्डन किया गया है । वस्तुतः निराकार ब्रह्म और साकार ईश्वर
एक ही हैं किन्तु साधक के अनुभव के अनुसार वे दो प्रतीत होते
हैं । जो साधक सिद्ध हो जाता है वह दोनों को एक देखता है ।

नोट—पहिली दो पंक्तियों में आत्मा की इन्द्रियों से भिन्नता सुख, प्रकाश,
नैरन्तर्य तथा नैराहार्य में बताई गई है ।

४४

अखिल खिलै नहि का कहि पंडित, कोइ न कहै समुझाई ।
अबरन बरन रूप नहि जाके, कहँ लौ लाइ समाई । टेक ।
चंद सूर नहि रात दिवस नहि, धरनि अकास न भाई ।
करम अकरम नहि सुभ आसुभ नहि, का कहि देहुँ बड़ाई । १ ।
सीत वायु ऊसन नहि सरवत, काम कुटिल नहि होई ।
जोग न भोग क्रिया नहि जाके, कौँ नाम सत सोई । २ ।
रिंजन निराकार निरलेपी, निरबीकार निसासी ।
काम कुटिलता ही कहि गावैं, हरहर आवै हाँपी । ३ ।
गगन धूर-धूप नहि जाके, पवन पूर नहि पानी ।
गुन निर्गुन कहियत नहि जाके, कहौ तुम बात सयानी । ।
याही सों तुम जोग कहत हो, जब लग आस की पार्सी ।
छुटै तबहि जब मिलै एक ही, भन रैदास उदासी । ५ ।

शब्दार्थ — अखिल = सम्पूर्ण, अखण्ड । परमात्मत्व को अखिल कहा जाता है जो
हेगल तथा ब्रैडले के अनुसार सम्पूर्ण (The whole) है, अंश
नहीं है । ज्ञान-विज्ञान (Epistemology) की दृष्टि से वह
अखिल अर्थात् अखण्ड है । उसमें द्विधा विषय और विषयी का

विभाजन नहीं है । इसे ही ब्रैडले अखण्ड या समग्र ज्ञान (The whole Experience) कहता है । खिलै = कली की भाँति अलग-अलग हो जाना ।

अवरन = अवर्ण, बिना रूप—रंग । बरन—रूप...जाके = जिसके वर्ण (रंग) और रूप (आकार) नहीं है । यह अवरन की व्याख्या है । यदि हम अवरन का दूसरा अर्थ लेना चाहें तो फिर अवरन का अर्थ अकथनीय या अवर्ण्य होगा । दोनों अर्थ एक ही हैं । प्रायः संत और कवि लोग एक शब्द को दुहरा देते हैं । इससे अवरन और बरन रूप नहीं जाके दोनों साथ-साथ हैं । रात-दिवस = काल, परमात्मत्व कालातीत है । धरनि-आकास = देश, वह देशातीत है । ऊसन = ओस । सरबत = चूना, शीतल वायु में जिस प्रकार ओस पड़ती है वैसे पानी परमात्मत्त्व में नहीं चूता है । कबीर-जैसे रहस्यवाद का यहाँ खण्डन है । निसासी = विना श्वास-निश्वास का । हरहर = ठठाय के । गगन = आकाश । धूर = पृथ्वी । धूप = तेज, अग्नि । पवन = वायु । पूर = लहर । आस की पासी = आशा का बंधन, फंस । मन = कहते हैं ।

विशेष—इस पद में अद्वैत वेदान्तानुसार परमतत्त्व का वर्णन है ।

४५

ऐसो बहुत अनुभी कहत न आवै ।
साहिब मिलै तो को बिलगावै । टेक ।
सब मैं हरि है, हरि मैं सब है, हरि अपनो जिन जाना ।
साखी नहीं और कोइ दूसर, जाननहार सयाना । १ ।
बाजीगर सो राँचि रहा, बाजी का मरम न जाना ।
बाजी भूठ साँच बाजीगर, जाना मन पतियाना । २ ।
मन थिर होइ तो कोइ न सुँभै, जानै जाननहारा ।
कह रैदास बिमल बिबेक सुख, सहज सरूप सँभारा । ३ ।

तुलनीय पद—अब हम जाना हो हरि बाजी का खेल ।

डंक बजाय देखाय तमाशा, बहुरि सो लेत सकेल ।

हरि बाजी सुर-नर-मुनि जहँडे, माया चेटक लाया ।

घर में डारि सबन भरमाया, हिरदय ज्ञान न आया ।

बाजी भूँठ बाजीगर साँचा, साधुन की मति ऐसी ।

कह कबीर जिन जैसी समझी, ताकी गति भइ तैसी ।

“कबीर” (हजारी प्रसाद द्विवेदी) पृष्ठ ३०७-३०८ ।

शब्दार्थ—अनुभव = परम तत्त्व का ज्ञान । थिर = स्थिर । सहज = अव्यवहित ज्ञान (Immediate Experience) । बिलगावे = पृथक् होना चाहेगा । सरूप = स्वरूप । सँभारा = स्मरण करता है ।

विशेष—इस पद में परमात्मतत्त्वानुभूति वर्णित है । इसी अनुभूति को रविदास दर्शन कहते हैं । इसमें परमात्मा का दर्शन होता है । सगुण ईश्वर के दर्शन की यह भाषा वस्तुतः अलंकारिक है । परमार्थतः इस अनुभूति में कुछ ज्ञेय रूप से नहीं सूझता है । सज्ञान लोग केवल स्वयं अनुभव करके जानते हैं । इस अवस्था में मन स्थिर और शान्त रहता है; अनुभव को स्मरण करता रहता है और उससे पृथक् नहीं होना चाहता है । इसमें संसार जादू-जैसा मिथ्या लगता है । अनुभूत तत्त्व बाजीगर प्रतीत होता है किन्तु वस्तुतः सब कुछ करते हुए भी वह अकर्ता-अभोक्ता है । तत्त्वविज्ञान और ज्ञान-विज्ञान का प्रारम्भ इसी अनुभव से होता है । इस पद का महत्व रविदास की दार्शनिक विचार-धारा में चूड़ान्त है ।

४६

माधो भरम कैसेहु न बिलाई ।

ताते द्वैत दरसै आई । टेका ।

कनक कुंडल सूत पट जुदा, रजु भुअंग भ्रम जैसा ।

जल तरंग पाहन प्रीति मा ज्यो, ब्रह्म जीव श्रुति ऐसा । १ ।

बिमल एकरस उपजै न बिनसै, उदय अस्त दोउ नाहीं ।
 बिगता बिगत घटै नहि कबहूँ, बसत बसै सब माहीं ।२।
 निश्चल निराकार अज अनुपम, निरभय गति गोविदा ।
 अगम अगोचर अच्छर अतरक, निरगुन अंत अनंदा ।३।
 सदा अतीत ज्ञानघन वर्जित, निरबिकार अबिनासी ।
 कह रैदास सहज सुन्न सत, जिवनमुक्त निधि कासी ।४।

पाठभेद—१ इति ।

तुलनीय पद— यद्वन्मृदि घटभ्रान्तिः शुक्तौ व रजतस्थितिम् ।
 तद्वद् ब्रह्मणि जीवत्वं भ्रान्त्या पश्यति न स्वतः ॥५६॥
 यथा मृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिधा ।
 शुक्तौ हि रजतख्याति जीवशब्दरतथा परे ॥३०॥
 यथा तरङ्गकल्लोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम् ।
 पात्ररूपेण ताम्रं हि ब्रह्माण्डौघैस्तथात्मना ॥६३॥
 घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः ।
 जगन्नाम्ना चिदाभाति ज्ञेयं तत्तदभावतः ॥६४॥

अपरोक्षानुभूति

शब्दार्थ—द्वैत = ब्रह्म और जीव दोनों पृथक् दीख पड़ते हैं । रजु = रस्सी ।
 प्रतिमा = देवमूर्ति । द्वति = द्वैत-भाव । बसत = वस्तु । अनिश्चल =
 निश्चल, स्पन्दनहीन । अच्छर = अविनाशी । अतरक = अतर्क्य, जो
 तर्क-वितर्क द्वारा समझ में न आ सके । सदा अतीत = शाश्वत परे ।
 ज्ञानघन-वर्जित = अज्ञेय, जो न जाना जा सके । जिवन.....
 वासी = जीवन्मुक्त पुरुष के लिए काशी सदृश निवास-स्थान ।
 कासी = काशी, जीवन्मुक्तों का नगर ।

विशेष—ऊपर दिए उद्धरणों के अतिरिक्त ये पंक्तियों भी समानार्थक हैं

(१) न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनः ।

न विद्यो न विजानीमो यथैतदनु शिष्यात् । केन० १।

- (२) नैषा तर्केण मतिरापनेया कठ० २।६ ।
 (३) नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं
 नाप्रज्ञं अदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचित्यमव्यपदेश्यमेकात्म
 प्रत्ययपारं प्रपञ्चोपशमम् शान्तम् शिवमद्वैतम् । मा० १।७।
 (४) त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् । गी० ११।३७।
 (५) नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः । वही २।२४
 अव्यक्तोऽयमवित्त्योऽयमाविकार्योऽयमुच्यते । वही २।२५

४७

मन मेरो सत्त सरूप विचारं ।
 आदि अंत अनंत परम पद, संसा सकल निवारं । टेक।
 जस हरि कहिये तस हरि नाही, है अस जस कछु तैसा ।
 जानत जानत जान रह्यो सब, मरम कहो निज कैसा । १।
 करत आन अनुभवत आन, रस मिलै न बेगर होई ।
 बाहर भीतर प्रगट गुप्त, घट धट प्रति और न कोई । २।
 आदिहु एक अंत पुनि सोई, मध्य उपाइ जु कैसे ।
 अहै एक पै भ्रम से दूजो, कनक अलंकृत जैसे । ३।
 कह रैदास प्रकास परम पद, का जप तप विधि पूजा ।
 एक अनेक अनेक एक हरि, कहों कौन बिधि दूजा । ४।

शब्दार्थ—सत्त सरूप = सत् का स्वरूप । विचारं = विचार करो । जस.....
 तैसा = हरि को जैसा कहा जाता है वैसे वे नहीं है । फिर भी वे वैसे
 ही कुछ हैं अर्थात् उनको सब लोग जानते हैं पर कह नहीं पाते हैं ।
 बेगर = (१) बेगार, वह काम जो चित्त लगाकर न किया जाय,
 (२) बेहर, अलग, पृथक् । अलंकृत = अलंकार, सोने का आभूषण ।

विशेष—यह पद भी अद्वैतवाद का प्रतिपादक है । यह बहुत कुछ ब्रैडले के इस
 कथन से मिलता जुलता है कि हम सभी सत् का सत्य ज्ञान रखते हैं

पर उसे हम भली-भाँति व्यक्त नहीं कर सकते हैं । वह ज्ञान हमारे संशय का निवारक है ।

४८

थोथो १जानि पछोरौ रे कोई ।

जोइ रे पछोरो जा मैं निजकन होई ।टेक।

थोथी काया थोथी माया ।

थोथा हरि बिन जनम गँवाया ।१।

थोथा पंडित थोथी बानी ।

थोथी हरि बिनु सबै कहानी ।२।

थोथा मंदिर भोग विलासा ।

थोथी आन देव की आसा ।३।

साचा सुमिरन नाम बिसासा ।

मन वच कर्म कहै रैदासा ।४।

शब्दार्थ—थोथो=पोला, निस्सार । पछोरौ=फटकना, सूप में रखकर अन्न साफ करना । निज कन=आत्म-सुख के कण । बिसासा=विश्वास । जानि=मत ।

पाठभेद—१-जानि

विशेष—फटकना भारत के ग्रामीण जीवन की एक साधारण क्रिया है । औरतें सूप से किसी-अन्न को पछोरती हैं जिससे साफ अन्न अलग हो जाता है और मिट्टी आदि निकल जाती है । ज्ञान-चर्चा भी फटकना है । ज्ञानी को असार-वस्तुओं से सार-वस्तु को निकालना पड़ता है । आत्मा ही सार-वस्तु है । 'एकात्मप्रत्ययसारम् यह माण्डूक्योपनिषद् का वचन है । रविदास को भी यह मान्य है । इसी से वे कहते हैं कि हमें उसी ज्ञान-चर्चा में संलग्न होना चाहिए जिसमें आत्मतत्त्व छिपा हो और हमें आत्मतत्त्व निकालना पड़े । अस्तु मनसा वाचा कर्मणा

विश्वास सहित नाम का स्मरण ही सत्य है । अन्य सभी वस्तुएँ थोथी हैं । थोथापन रविदास के द्वारा स्वीकृत एक दोष है जिसे कोरे दार्शनिक प्रायः करते हैं ।

तुननीय पद—पंडिय पंडिय पंडिया कणु छंडिवि तुस कंडिया ।

अत्थे गंथे तुढोसि परमत्थुण जाणहि मूढोसि ।

णाण तिडिक्की सिक्खि वढ कि पढियइं बहुएण ।

जा सुंधुक्की णिडुइइ, पुण्णु वि पाउ खणेण ।

मुनि रामसिंह

संतसुधासार पृष्ठ २१ पर उद्धृत ।

४६

गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ ।

गावनहार को निकट बताऊँ । टेक ।

जब लग है श्या तन की आसा, तब लग करै पुकारा ।

जब मन मिल्यो आस नहि तन की, तब को गावन हारा । १ ।

जब लग नदी न रसमुद समावै, तब लग बढ़ै हँकारा ।

जब मन मिल्यो रामसागर सौं, तब यह मिटी पुकारा । २ ।

जब लग भगति मुक्ति की आसा, परम तत्त्व सुनि गावै ।

जहं जहँ आस धरत है यह मन, तहँ तहँ कछू न पावै । ३ ।

छाड़ै आस निरास परम पद, तब सुख सति कर होई ।

कह रैदास जासौं और करत है, परम तत्त्व अब सोई । ४ ।

पाठभेद—१ इहि तन । २ समुंद्र ।

शब्दार्थ—हँकारा=नदी के गरजने की आवाज । नदी के हँकार की तुलना

मनुष्य की पुकार से की गई है । पुकार=वर्णन करना, परम तत्त्व

का शब्दों द्वारा वर्णन । गावै=परमतत्त्व के विषय में बोलना या

तर्क करना । निरास=तृष्णारहित, अनासक्त । आस=

आशा । सति कर=सत का । सुख=आनंद, अनुभवानन्द ।

जासौं ओर करत है = जिससे भिन्न करते हैं । परम तत्त्व से ही सभी वस्तुओं को लोग भिन्न करते हैं क्योंकि सभी नश्वर हैं और वह अनश्वर है ।

दर्शनीय—इस पद में आए हुए नदी के दृष्टान्त को हम सर्व प्रथम छान्दोग्योपनिषद् में देखते हैं । देखिए छान्दोग्योपनिषत् ६।१० और आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् । तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी । गी० २।७० ।

विशेष—यहाँ पुकारना और गाना पारिभाषिक शब्द हैं । पारिभाषिक शब्दों की व्यावृत्ति करने के पश्चात् सीधा अर्थ यह निकलता है कि जब तक मनुष्य आशा के बन्धन में बँधा रहता है तब तक वह परम तत्त्व के विषय में दूसरों से सुनना चाहता है और स्वयं कुछ कहना चाहता है । पर जब वह निष्काम हो जाता है तो उसे उस तत्त्व की सहज अनुभूति हो जाती है । फिर उसकी पूर्व इच्छा जो सत् के विषय में तर्क करती थी नहीं रह जाती है । अनुभूति-वर्त्ता अपने अनुभव को कह भी नहीं सकता है क्योंकि उसके पास कहने का कोई साधन रह नहीं गया; मन, बुद्धि, अहङ्कार सभी उसके विलीन हो गए हैं ।

५०

केदारा

कहु मन राम नाम सँभारि ।

माया के भ्रम कहा भूल्यो, जाहुगे कर भारि । टेव ।

देखि धौ इहाँ कौन तेरो, सगा सुता नहि नारि ।

तोरि उतँग सब दूरि करिहैं, देहिगे तन जारि । १।

प्राप्त गये कहो कौन तेरा, देखि सोच विचारि ।

बहुरि येहि कलिकाल माहीं, जीति भावै हारि । २।

यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रतिहारि ।

कहु रैदास सत बचन गुरु के, सो जिव ते न बिसारि । ३।

शब्दार्थ—कर भारि = हाथ खाली करके । धौं = तो भला । उतंग =
(१) उटंग, छोटा कपड़ा, (२) नाता । भावै = चाहे, अथवा ।
थोथरो = खोखली, सारहीन ।

भगति.....हारि = अपना सर्वस्व भक्ति की बाजी पर हार दे ।

विशेष—मृत्यु पर दृष्टि रखना दार्शनिक का प्रथम कर्तव्य है । इससे नश्वरता का पाठ मिलता है और फिर सदाचरण तथा कर्तव्य-पालन की चेतावनी मिलती है । प्रस्तुत पद में रविदास मृत्यु को ध्यान में रखते हैं । जगत् की निस्सारता फिर अपने-आप ज्ञात होती है । राम-नाम का स्मरण तथा सिद्ध गुरु की वाणी का विचार करते रहना तब आवश्यक हो जाता है । यह धारणा दर्शन को उत्पन्न करने वाली है । वर्तमान यूरोप में अस्तित्ववाद (Existentialism) नाम से जो विचार-धारा चल रही है उसका भी उद्देश्य मृत्यु को प्रधानतः ध्यान में रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करना तथा परमतत्त्व के प्रति भक्त होना है ।

५१

भाई रे सहज बंदो लोई, बिन सहज सिद्धि न होई ।
लौलीन मन जो जानिये, तब कीट भृंगी होई । टेक ।
आपा पर चीन्हे नहीं रे, और को उपदेस ।
कहाँ ते तुम आयो रे भाई, जाहुगे किस देस ।१।
कहिये तो कहिये काहि कहिए, कहाँ कौन पतिआइ ।
रैदास दास अजान ह्वे करि, रह्यो सहज समाइ ।

शब्दार्थ—बंदो लोई = वंदना कर लो । तब.....होई = कीट अपने शत्रु भृंग को भय से सोचते-सोचते भृंग हो जाता है । इसी प्रकार जो मनुष्य ब्रह्म को सोचता है वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है । देखिए,

सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया ।

कीटको भ्रमरं ध्यायन्भ्रमरत्वाय कल्पते ।

विवेचि चूडामणि ३५६ ।

आपा = अहंकार । अजान ह्वै करि = अज्ञात होकर, न जानते हुए ।

यह सुकराती अज्ञान (Socratic Ignorance) है ।

तुलनीय पद—ऐसैं मन लाइ लै रांम रसनां

.....

भ्रिगी कीट रहैं ल्यो लाइ, ह्वै लै लीन भ्रिग ह्वै जाइ ।

राम नाम निज अमृत सार, सुमरि सुमरि जन उतरे पार ।

कहै कबीर दासनि को दास, अब नही छाड़ौं हरि के चरन निवास ।

क० प्र० पृ० २१८ ।

विशेष— मनुष्य कहाँ से आया ? वह कहाँ जायगा ? ये ऐसे विकट प्रश्न हैं कि इनका उचित उत्तर कोई नहीं दे सकता है । दार्शनिक के लिए ये अनिवार्य प्रश्न हैं । इनके उत्तर में वह सत् की अनुभूति करता है । सत् से हम आए हैं और सत् तक हम जायेंगे । यात्रा में सत् का हम ध्यान नहीं रखते । अहंकार बना रहता है जिससे हम दूसरों के सद्वचन को सुनते भी नहीं हैं । जब तक सहज ज्ञान का अनुभव हम नहीं करेंगे तब तक हम इसी अहंकार की यात्रा में रहेंगे । मुक्त होने के लिए कीट का लव चाहिए । शाङ्कर वेदान्त की भावनाओं से ओत-प्रोत यह पद रविदास और शङ्कराचार्य के मत को एक करता है । वस्तुतः रविदास सच्चे शाङ्कर वेदान्ती थे ।

५२

अब कछु मरम बिचारा हो हरि ।

आदि अंत औसान राम बिन, कोइ न करै निवारा हो हरि । टेक ।

जल मैं पंक, पंक अमृत जल, जलहि सुद्ध होइ जैसे ।

ऐसे करम भरम जग बाँध्यो, छूटै तुम बिन कैसे हो हरि । ।

जप तप बिधी निसेध नाम करूँ, पाप पुत्र दोउ माया ।
 ऐसे मोहि तन मन गति बीमुख, जनम जनम डहकाया हो हरि ।२।
 ताड़न, छेदन, त्रायन, खेदन, बहु बिधि कर ले उपाई ।
 लोनखड़ी संजोग बिना जस, कनक कलंक न जाई हो हरी ।३।
 भन रैदास कठिन कलि के बल, कहा उपाय अब कीजै ।
 भव बूड़त भयभीत जगत जन, करि अवलंबन दीजै हो हरी ।४।

शब्दार्थ—मरम = रहस्य । निवारा = रक्षा, बचाना । लोनखड़ी = नौसादर ।

५३

भगती ऐसी सुनहु रे भाई ।
 आइ भगति तब गई बड़ाई । टेक ।
 कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हे ।
 कहा भयो जे चरन पखारे, जौ लौं तत्त्व न चीन्हे ।१।
 कहा भयो जे मूँड़ मुड़ायो, कहा तीर्थ व्रत कीन्हे ।
 स्वामी दास भगत अरु सेवक, परम तत्त्व नहि चीन्हे ।२।
 कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै ।
 तजि अभिमान मेटि आषा पर, पिपिलिक ह्वै चुनि खावै ।३।

शब्दार्थ—बड़ाई = बड़प्पन, अहंकार । नाचे अरु गाए = कीर्तन । चरन पखारे = तीर्थ तथा मूर्तिपूजा । पिपिलिक = पिपीलिका, चीटी । घूलि-मिश्रित शर्करा को पिपीलिका ही चुन सकती है, हाथी नहीं कर सकता । परम रस की अनुभूति के लिए क्षुद्र-से-क्षुद्र जीव बनना पड़ता है ।

विशेष—रविदास ज्ञानी भक्त थे । उन्होंने इस पद में इस बात पर जोर दिया है कि जब तक तत्त्व को चीन्हा नहीं गया है तब तक भक्ति नहीं हो सकती है । तत्त्व का चीन्हना ज्ञान है । यह ज्ञान विषय-विषयी के ज्ञान की भाँति नहीं है, प्रत्युत पहिचान है जिसे रविदास 'परिचय'

(परचा) कहते हैं। पर हम यह नहीं कह सकते हैं कि 'परिचय' रहस्यवाद के ढंग का है। परिचय का अर्थ इतना है कि उसमें हमारी बुद्धि काम करती है। अतएव उसे हम बुद्धिवाद के विपरीत नहीं ले जा सकते हैं जैसा कि रहस्यवादी करते हैं। यह तत्त्व-ज्ञान रविदास का मुख्य दार्शनिक विचार है। सहज ज्ञान के नाम से भी वे इसे पुकारते हैं पर ब्रैडले की भाँति रविदास का सहज ज्ञान भी मानवस्तर से निम्न पाशव कोटि का नहीं है वरन् मानवीय स्तर से भी उच्चतर ज्ञान है। मनुष्य का अवतार दुर्लभ है। मनुष्य-शरीर से ही मुक्ति मिल सकती है। इस सिद्धान्त का आशय यही है कि सहज ज्ञान बुद्धिवाद से नीचा केवल संवेग नहीं है वरन् आध्यात्मिक ज्ञान है जिसमें बुद्धि की भी उपयोगिता है। भक्ति की परिभाषा निरङ्कारता है। यह रविदास की मौलिक देन है। इतनी स्पष्टता से भक्ति की यह परिभाषा अन्यत्र दुर्लभ है।

५४

संतो अनिन भगति यह नाहीं ।

जब लग सिरजत मन पांचो गुन, व्याप्त है या साहीं । टेका ।

सोई आन अंतर करि हरि सो, अपमारग को आनै ।

काम क्रोध मद लोभ मोह की, पल पल पूजा ठानै । १।

सत्य सनेह दृष्ट अंग लावै, अस्थल अस्थल खेलै ।

जो कछु मिलै आन आखत सों, सुत दारा सिर मेलै । ।

हरिजन हरिहि और ना जानै, तजै आन तन त्यागी ।

कह रैदास सोई जन निर्मल, निसि दिन जो अनुरागी । ३।

शब्दार्थ—अनिन = अनन्य । जब.....सिरजत = जब तक मन की प्रवृत्तियाँ चंचल रहा करती हैं। पांचो गुन = रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द । सोई.....सों = वही मन हरि से विलग होकर । अस्थल

अस्थल = स्थल-स्थल, हर जगह । ग्रा।-ग्राखत = अन्न तथा अक्षत, खाद्य पदार्थ । इष्ट अंग = प्रेमा क शरीर में । लावै = लगता है । खेलै = आनंद करता है ।

विशेष—इस पद में अनन्य भक्ति क्या है ? क्या नहीं है ? यह बताया गया है । प्रथम ४ पंक्तियों में बताया गया है कि अनन्य भक्ति क्या नहीं है । अंतिम ४ पंक्तियों में बताया गया है कि अनन्य भक्ति क्या है । इस अनन्य भक्ति को गृहस्थ भी कर सकता है । जो कुछ मिले भक्त उसे लाकर दारापुत्र को दे, ईश्वर या अपने इष्ट देव से प्रेम करे, प्रति स्थान आनन्द लेता रहे, हरिजन और हरि को छोड़कर अन्य किसी को न जाने, त्यागी तथा अनुरागी रहे । रविदास के अनुसार वह अवश्य निर्मल हृदय होगा ।

५५

भाई रे भरम भगति सुजान ।
जो लौं साँच सो नहि पहिचान ।टेक।
भरम नाचन, भरम गायन, भरम जप तप दान ।
भरम सेवा भरम पूजा, भरम सो पहिचान ।१।
भरम षट क्रम सकल सहता, भरम गृह बन जानि ।
भरम करि करि करम कीये, भरम की यह बानि ।२।
भरम इंद्रि निग्रह कीया, भरम गुफा में बास ।
भरम तौ लौं जानिए, सुन्न की करै आस ।३।
भरम सुद्ध सरीर तौ लौं, भरम नावँ विनावँ ।
भरम भनि रे ।स तौ लौं, जो लौं चाहै ठावँ ।४।

तुलनीय पद—हरि बिन भूठे सब व्यौद्वार, बेटे कोउ करौ गँवार ।
भूठा जग तप भूठा ग्रान, राम राम बिन भूठा ध्यान ।
बिधि न खेद पूजा आचार, सब दरिया में वार न पार ।

इंद्री स्वारथ मन के स्वाद, जहां सांच तह मांडै बाद ।

दास कबीरा रह्या ल्यौ लाइ, भर्म कर्म सब दिये बहाइ ।

क० अ० पृष्ठ १७४ पद २५२ ।

शब्दार्थ—सो पहिचान = वह ज्ञान जो नाच, गान, जप, तप, दान, सेवा तथा पूजा कराता है । अथवा वह ज्ञान जो नाच, गान, जप, तप, दान, सेवा तथा पूजा से उत्पन्न होता है अथवा इन सब का ज्ञान ।

भरम भगति = भ्रम-भक्ति, भूठी भक्ति । सुजान = ठीक तरह से जानिए । बन-जानि = बान-प्रस्थ, बन जाना । नावैं = नाम जो सगुण और निर्गुण से परे है । विनावैं = नाम-रहित । ठावैं = स्थान, सामीप्य; ठिकाना ।

विशेष—इस पद में नाम, अनाम, पहिचान तक को भ्रम कह दिया गया है जब तक 'ठाव' (स्थान) की चाह है । यह पद बहुत गूढ़ है । यदि ध्यान न दिया जाय तो इसका अनर्थ हो सकता है । जब तक नाम-पहिचान नहीं है—इतना हर बार जोड़ना चाहिये । जप, तप, नाम, अनाम आदि भ्रम नहीं है । पहिचान होने पर रविदास इनमें से अधिकांश को उदाहरणार्थ नाम, जप, दान, सेवा आदि को मानते हैं । पर वे इन्हें निष्काम भाव से करते थे । इससे उनका कर्म कर्म नहीं था । यहाँ रविदास का भ्रम ब्रैडले के भ्रम (Appearance) के समीप आ गया है । रविदास की दार्शनिकता यहाँ स्फुट है ।

नोट—यहाँ शङ्कराचार्य का यह कथन संगत है—अध्यासं पुरस्कृत्य सर्वे प्रमाणप्रमेयव्यवहारा लौकिका वैदिकाश्च प्रवृत्ताः, सर्वाणि च शास्त्राणि विधिप्रतिषेधमोक्षपराणि—ब्रह्मसूत्रभाष्य उपोद्धात ।

५६

ऐसी भगति न होइ रे भाई ।

राम नाम बिनु जो कछु करिये, सो सब भरमु कहाई । टेक ।

भगति न रस दान, भगति न कथै ज्ञान ।
 भगति न बन में गुफा खुदाई ।१।
 भगति न ऐसी हाँसी, भगति न आसा-पासी ।
 भगति न यह सब कुल कान गँवाई ।२।
 भगति न इंद्रो बाँधा भगति न जोग साधा ।
 भगति न अहार घटाई, ये सब करम कहाई ।३।
 भगति न इंद्रो साधे भगति न वैराग बांधे ।
 भगति न ये सब वेद बड़ाई ।४।
 भगति न सूड़ मुड़ाए, भगति न माला दिखाये ।
 भगति न चरन धुवाए, ये सब गुनी जन कहाई ।५।
 भगति न तौ लौं जाना, आपको आप बखाना ।
 जोड़ जोड़ करै सो सो करम बड़ाई ।६।
 आपो गयो तब भगति पाई, ऐसी भगति भाई ।
 राम मिल्यो आपो गुन लोयो, रिधि सिधि सबै गँवाई ।७।
 कह रैदास छूटी आस सब, तब हरि ताही के पास ।
 आत्मा थिर भई तब सबही निधि पाई ।८।

शब्दार्थ—भ्रम = भक्ति के दोष को भ्रम कहते हैं, भटकना, निस्मारता ।
 आसा-पासी = आशा की फाँसी या बन्धन । कुल कान गँवाई =
 कुल-भयाना-नाश, यह एक दोष है । वेद बड़ाई = वेद-गरिमा,
 वेद-लिखित कर्मकाण्ड का महत्व, यह भी भक्ति में एक दोष है ।
 गुनी जन कहाई = गुनी होना, यह भी भक्ति में दोष है ।

विशेष—इस पद में भक्तियोग के कतिपय दोष गिनाए गए हैं । सच्ची भक्ति
 इन दोषों से मुक्त रहती है । आपा का नाश, आत्मा की स्थिरता
 तथा निष्कामता सच्ची भक्ति के लक्षण हैं ।

५७

अब मेरी बूढ़ी रे भाई, ताते चढ़ी लोक बड़ाई । टेक ।
 अति अहंकार उर मा सत रज तम, तामें रह्यो उरभाई ।
 कर्मन बभ्रि पर्यो, कछु नहिं सूझै स्वामी नावें भुलाई । १।
 हम मानौ गुनी, जोग सुनि जुगता, महामुरुख रे भाई ।
 हम मानो सूर सकल बिधि त्यागी, ममता नहीं मिटाई । २।
 हम मानो अखिल, सुन्न मन सोध्यो, सब चेतन सुधि पाई ।
 ज्ञान ध्यान सब ही हम जान्यो, बूझों कौन सों जाई । ३।
 हम जानौ प्रेम प्रेमरस जानै, नौबिधि भगति कराई ।
 स्वांग देखि सब ही जन लटक्यो, फिरि यों आन बँधाई । ४।
 यह तो स्वांग साच ना जानो, लोगन यह भरमाई ।
 स्वच्छ रूप सेली जब पहरी, बोली तब मुधि आई ।
 ऐसी भगति हमारी संतो, प्रभुता इहै बड़ाई ।
 आपन अनत और नहिं मानत, ताते मूल गँवाई । ६।
 मन रैदास उदास त हि ते, अब कछु मो पै कर्यो न जाई ।
 आपा खोए भगति होत है, तब रहै अंतर उरभाई । ६।

तुलनीय पद— यो वा पुरे सो ऽ हमिति प्रतीतो

बुद्धया विक्लृप्तस्तमसातिमूढया ।
 त यैव निःशेषतया विनाशे,
 ब्रह्मात्मभावः प्रतिबन्धशून्यः ।

विवेकचूड़ामणि ३०२

शब्दार्थ—जुगता = चतुर । नौ विधि भगति = नवधा भक्ति—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
 अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।

भागवत पुराण ७।५।२३

स्वांग = पाखण्ड । आन = मर्यादा, सम्मान । उरझाई = संलग्न । आपन...
मानत = अपना और अन्य का भिन्न नहीं मानते ।

विशेष—रविदास कीर्त्ति-लोलुप नहीं थे । वे सम्मान तथा ख्याति नहीं चाहते थे । जब उनकी ख्याति बढ़ने लगी तो इसे वे अपना पतन समझकर भगवान् से प्रार्थना करने लगे कि योगी, गुणी, भक्त, ज्ञानी, शूर, त्यागी, मायामुक्त, ध्यानी आदि किसी रूप में वे ख्याति नहीं चाहते हैं । निष्कामता इसी का नाम है । यह आपा के खोने से अर्थात् निरहङ्कारता से ही सम्भव है । देखिए—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

गीता २।७१

५८

नरहरि चंचल है मति मोरी ।

कैसे भगति करूँ मैं तोरी । टेक ।

तू मोहि देखे, हौं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई ।१।

तू मोहि देखै, तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई ।२।

सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहि जाना ।

गुन सब तोर मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना ।३।

मैं-तैं तोरि-मोरि असमभि सों, कैसे करि निस्तारा ।

कह रैदास कृष्ण करुनामय, जै जै जगत अधारा ।४।

शब्दार्थ—कृत = किया हुआ । असमभि = अज्ञान, अन्ति । सों = से ।
यह.....खोई = यह तो सभी प्रकार से गई गुजरी भावना है ।

विशेष—यद्यपि रविदास नर-पूजा के विरोधी हैं, फिर भी वे अवतारवाद की दार्शनिक और नैतिक उपयोगिता को मानते हैं । वस्तुतः यही सच्चा अवतारवाद है । यह मानना कि परम तत्व किसी व्यक्ति-विशेष में

रूपवान् हो जाता है भूल है क्योंकि व्यक्ति सीमित और सादि तथा सान्त है । परमतत्त्व सदा अनादि तथा अनन्त है । वह व्यक्ति वहीं, समष्टि है । इसी से अवतारवाद में आंशिक अवतार की कल्पना की गई है । वस्तुतः दार्शनिक के लिए सूक्ष्म अवतारवाद का ग्रहण अनिवार्य है जिसमें भगवान् की सत्ता किसी व्यक्ति-विशेष के माध्यम से पीड़ितों की रक्षा करती है । रविदास इसी प्रकार का अवतारवाद मानते थे । इसी से वे अस्तित्ववादी होते हुए भी नरहरि और करुणामय कृष्ण का स्मरण करते हैं । नरहरि ने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी और कृष्ण ने अनेक जनों पर करुणा दिखाई थी जिनकी कथायें भागवत पुराण में वर्णित हैं विशेषतः सुदामा, विदुर और द्रौपदी पर । इस प्रकार के चरित से भक्तों को प्रेरणा मिलती है । इसीलिए अखिल, अलख, अकथ या नाम या अनाम के उभासक रविदास को सगुण अवतारों के नाम की आवश्यकता पड़ी । इससे आपाततः सिद्ध होता है कि रविदास अवतारवाद के विरोधी नहीं थे, प्रत्युत अवतारवाद के वास्तविक मर्म के ग्राही थे ।

५६

अब मैं हार्यो रे भाई ।

थकित भयो सब हाल चाल ते, लोक न बेद बड़ाई । टेक ।

थकित भयो गायन अरु नाचन, थाकी सेवा पूजा ।

काम क्रोध ते देह थकित भइ, कहौं कहाँ लौं दूजा । १।

राम जनहुँ ना भगत कहाऊँ, चरन पखारूँ न देवा ।

जोइ जोइ करौं उलटि मोहि बांधै, ता ते निकट न भेवा । २।

पहिले ज्ञान क किया चांदना, पाछे दिया बुझाई ।

सुन्न सहज मैं दोऊ त्यागे, राम न कहूँ दुखदाई । ३।

दूर बसे षट्कर्म सकल अरु, दूरउ कीन्हे सेऊ ।

ज्ञान ध्यान दूर दोउ कीन्हे, दूरिउ छाड़े तेऊ । ४।

पाँचो थकित भये हैं जहँ तहँ, जहाँ तहाँ थिति पाई ।
 जा कारन मैं दोरो फिरतो, सो अब घट में आई । ५।
 पाँचो मेरी सखी सहेली, तिन निधि दई दिखाई ।
 अब मन फूलि भयो जग महियाँ, आप में उलटि समाई । ६।
 चलत चलत मेरो निज मन थाकयो, अब मोसे चलो न जाई ।
 साई सहज मिलौ सोइ सनमुख, कह रैदास बड़ाई । ७।

शब्दार्थ—भेवा = भेद, मर्म, रहस्य जो परमतत्त्व है । चाँदना = प्रकाश ।
 दुखदाई = दुःख देने वाले । षट्कर्म—यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन,
 दान देना तथा दान लेना । सेऊ = सेवा । पाँचों = ५ ज्ञानेन्द्रियाँ ।
 थिति = स्थिति । जहाँ तहाँ = किसी स्थान पर । थकित = परेशान, श्रान्त ।
 यह थकान असाधारण है । थकावट होना आवश्यक है । बिना इस दशा
 के सत् की प्राप्ति नहीं हो सकती है । जब अनुभव हो जाता है तब थके हुए
 अंग-प्रत्यंग सखा बन जाते हैं । महियाँ = मैं । फूलि भयो = प्रसन्न हो गया ।
 घट = शरीर ।

विशेष—इस पद में साधना और सिद्धि दोनों का वर्णन है । घट में सत्
 का आना 'समाना' है जिसे वर्तमान पाश्चात्य अस्तित्ववादी दार्शनिक
 उपस्थिति (Presence) कहते हैं । इसी सत्प्राप्ति को रविदास तथा इन
 पाश्चात्य दार्शनिकों के अनुसार दुर्लभ मानव जीवन का लक्ष्य समझना
 चाहिए ।

६०

आयौ हो आयौ देव तुम सरना ।

जानि कृपा कीजो अपना जना । टेक ।

त्रिविध जोनि बास, जम को अगम बास,

तुम्हरे भजन बिनु भ्रमत फिरौ ।

ममता अहं विषै मद मातौ,
 यह सुख कबहुँ न दुतर तिरौं ।१।
 तुम्हरे नावँ बिसास छाड़ी है आन की आस,
 संसार धरम मेरो मन न धीजै ।
 रैदास दास की सेवा मानि हो देव बिधि देव,
 पतित पावन नाम प्रगट कीजै ।२।

शब्दार्थ—सरना = शरण । जानि = जान कर । त्रिविध जोनि = तीन प्रकार की योनि—१-जरायुज २-अण्डज और ३-उद्भिज्ज । दुतर = दुस्तर, जिसे पार करना कठिन हो, विकट । अहं = अहङ्कार । विषै = विषय, वासना । आन = अन्य । न धीजै = नहीं धरता है । पतित-पावन = पतितों को तारने वाले, यह भगवान् का एक नाम है ।

विशेष—मनुष्य अपनी शक्ति भर करके भी अपने को पतित पाता है क्योंकि कुछ न कुछ उससे बिगड़ ही जाता है । इसलिए वह पतित-पावन भगवान् का स्मरण करता है । यह सगुण भक्ति है जिसका दार्शनिक समन्वय निर्गुण-भक्ति के साथ नाम-भक्ति में रविदास ने किया है । पतित-पावन अन्ततोगत्वा एक नाम है जिससे नामी के गुण का पता चलता है । एक मात्र उसकी शरण में जाने से मुक्ति मिल सकती है क्योंकि पतित-पावन को जानना पाप से बचना है । यूनानी दर्शन का यह सिद्धान्त भारतीय दर्शन को भी मान्य है कि यदि हम किसी गुण को समझते हैं तो उसका कार्य-रूप से पालन भी करते हैं, ज्ञान गुण है । रविदास तथा अन्य भक्त पतित-पावन की कल्पना से पाप-रहितत्व का अनुभव करते हैं और वस्तुतः उसको आचरण में लाते हैं ।

६१

नरहरि प्रगटसि ना हो प्रगटसि ना हो ।

दीनानाथ दयाल नरहरे । टेक ।

जनमेउँ तौही ते बिगरान ।
 अहो कछु बूझै बहुरि सयान ।१।
 परिवारि बिमुख मोहि लागि ।
 कछु समुझि परत नहि जागि ।२।
 यह भो बिदेस कलिकाल ।
 अहो मैं आइ पर्यो जमजाल ।३।
 कबहुक तोर भरोस ।
 जो मैं न कहूँ तो मोर दोस ।४।
 अम कहिये तेऊ न जान ।
 अहो प्रभु तुम सरबस में सयान ।५।
 सुत सेवक सदा असोच ।
 ठाकुर पितहि सब सोच ।६।
 रैदास बिनवै कर जोरि ।
 अहो स्वामी तुम मोहि न खोरि । ।
 सु तु पुरबजा अकरम मोर ।
 बलि जाउँ करौ जिन कोर ।८।

शब्दार्थ—बिगरान = अलग हो गया हूँ । जागि = जग । खोरि = खोट या ऐब । पुरबल = पूर्व जन्म का । अकरम = बुरा कर्म । कोर = द्वेष, बुराई । जिन = मत ।

विशेष—१. इस पद से ज्ञात होता है कि रविदास को पारिवारिक जीवन से विरक्ति थी । उनका परिवार था । स्यात् पत्नी भी थी । पर उनका पारिवारिक जीवन नहीं था । वे स्थान-स्थान पर अपने को उदास कहते हैं । २. यह संसार विदेश है । सहज सुन्न (शून्य) घर है जो बेगमपुर नामक गाँव भी है । इससे यह न समझना चाहिए कि यहाँ इस लोक से भिन्न किसी अन्य लोक की कल्पना है । इस लोक का अस्तित्व नश्वर है और इसी का सार अब बेगमपुर है जो विदेश नहीं वरन् वतन है । ३. कर्मवाद के सिद्धान्त में रविदास को आस्था थी ।

६२

जो तुम तोरो राम मैं नहि तोरौ ।
 तुम से तोरि कवन से जोरौ । टेक ।
 तीरथ बरत न करौ अँदेसा ।
 तुम्हरे चरन कमल क भरोसा । १।
 जहँ जहँ जाओँ तुम्हरी पूजा ।
 तुम सा देव और नहि दूजा । २।
 मैं अपनो मन हरिसे जोर्यो ।
 हरि से जोरि सबन से तोर्यो । ३।
 सबही पहर तुम्हारी आसा ।
 मन बच क्रम कहै रेदासा । ४।

शब्दार्थ—तोरो = संबंध तोड़ना । जोरौ = संबंध जोड़ना ।

विशेष—इस पद में भक्त के प्रेम-रज्जु से बंधे भगवान् का रूप ध्यान में रखा गया है ।

६३

प्रभु जी संगति सरन तिहारी
 जग जीवन राम मुरारी । टेक ।
 गली गली को जल बहि आयो,
 सुरसरि जाय समायो ।
 संगत के परताप महातम,
 नाम गंगोदक पायो । १।
 स्वाँति बूंद बरसै फनि ऊपर,
 सीस बिषे होइ जाई ।
 ओही बूंद के मोती निपजै,

संगति की अधिकाई ।२।
 तुम चंदन हम रेंड़ बापुरे,
 निकट तुम्हारे आसा ।
 संगत के परताप महातम;
 आवै बास सुबासा ।३।
 जाति भी ओछीं करम भी ओछा,
 ओछा कसब हमारा ।
 नीचै से प्रभु ऊँच कियो है,
 कह रैदास चमारा ।४।

तुलनीय पद—प्रभु मेरो अवगुन चित न धरो ।

इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भर्यो ।
 जब दोनों मिलि एक धार भई सुरसरि नाम पर्यो ।

—सूरदास ।

विशेष—इस पद में सत्संग का प्रताप तथा रविदास का अपनी चमार-जातीयता पर स्वाभिमान व्यक्त हैं । डा० बड़थवाल का कहना बिल्कुल ठीक है कि सन्तों ने एक ऐसा वातावरण पैदा कर दिया था जिसमें नीच जाति वालों को भी अपनी जाति पर स्वाभिमान था । देखिए (The Nirguna School of Hindi Poetry पृ० 180)

६४

ज्यों तुम कारन केसवे, अंतर लव लागी ।
 एक अनूपम अनुभवी, किमि होइ विभागी । टेक ।
 इक अभिमानी चातृगा, बिबरत जम माहीं ।
 यद्यपि जल पूरन महीं, कहूँ वा रुचि नाहीं ।१।

जैसे कामी देखि कामिनी, हृदय शूल उ।जाई ।
 कोटि बैद बिधि ऊचरै, वाकी बिथा न जाई ।२।
 जो तेहि चाहे सो मिलै, आरत गति होई ।
 कह रैदास यह गोप नहि, जानै सब कोई ।३।

शब्दार्थ—अन्तर लव = हार्दिक प्रेम । चातुगा = चातक । बिथा = काम वासना वा काम की पीड़ा । आरत गति = आर्तगति, अनन्य भाव के साथ । गोप = रहस्य । विभागी = विभक्त । एक...विभागी = एक अनुपमतत्त्व का अनुभव हुआ है जो विभक्त किसी प्रकार से नहीं हो सकता है अर्थात् वह अनुपम एक अनुभव है जो ज्ञेय और ज्ञाता तथा ज्ञान की त्रिपुटी में विभक्त नहीं हो सकता है ।

विशेष—१. चातक का स्वाती के जल के प्रति प्रेम भारतीय साहित्य में विश्रुत है । यह अनन्य भक्ति का उदाहरण है ।

२. कामिनी के हृदय में कामी को देखकर जो शूल उत्पन्न होता है वह वैद्य द्वारा अच्छा नहीं हो सकता है । उसकी चिकित्सा उस कामी की प्राप्ति है । यहाँ रविदास फ्रायड के समीप आ गए हैं । इच्छाओं की, विशेषतः काम-वासना, की पूर्ति न होने के कारण लोग विक्षिप्त हो जाते हैं और कई प्रकार की ग्रन्थियां (Complexes) बना लेते हैं । फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) द्वारा ऐसे व्यक्तियों की चिकित्सा का विधान किया है जिसमें मानसिक चिकित्सा द्वारा दबी हुई वासनाओं को उभाड़ा जाता है और उनकी पूर्ति तथा शुद्धि की जाती है । रविदास फ्रायड की भावनाओं को कुछ अंश में सोचते हैं । वे फ्रायड की भाँति चिकित्सा नहीं करते वरन् कामी-कामिनी का संयोग ही करा देते हैं जिससे ग्रन्थि रह ही नहीं जाती है ।

तुलनीय—(१) तुलसीदास की दोहावली में चातक—चौतसी यहाँ द्रष्टव्य है । (२) मीरा की गति भी इस पद में वर्णित कामिनी-जैसी है ।

६५

राग बिलावल

मैं बेदनि कासनि आँखू,
हरि बिन जिव न रहै कस राखूँ । टेक ।
जिव तरसै इक दंग बसेरा१,
करहु सँभाल न सुर मुनि मेरा ।
बिरह तपै तन अधिक जरावै,
नींद न आवै भोज न भावै ।१।
सखी सहेली गरब गहेली,
पिउ की बात न सुनहु सहेली ।
मैं रे दुहागनि अध कर जानी,
गया सो जोबन साध न मानी ।
तू साईँ औ साहिब मेरा,
खिजमतगार बंदा मैं तेरा ।
कह रैदास अंदेसा येही,
बिन दरसन क्यों जिवहि सनेही ।३।

शब्दार्थ—बेदनि = बेदना । आँखूँ = कहूँ । भोज = भोजन । आसरु =
आश्रय । अध करि जानी = पाप करना ही जाना । तरसै = बेचैन है, किसी
वस्तु को न पाकर बेचैन रहना । दंग = स्तब्ध, विस्मित । बसेरा = टिकने का
स्थान या टिकने वाला । गहेली = घलण्डी, पागल । अंदेसा = भय । सखी
सहेली = इंद्रियाँ । आसरु = आश्रय, शरण । गरब-गहेली = गर्बीली

पाठभेद—१. ल्यों आसरु तेरा ।

विशेष—इसमें वियोगावस्था का चित्रण है । अभागिनी बनिता की भाँति
हरि-हीन जीव विरह में जलता है । उसे नींद और भोजन अच्छे नहीं लगते ।

यौवन बीत जाता है, पर उसकी साध पूरी नहीं होती। इन्द्रियाँ गर्व से पागल रहती हैं और अपने प्रिय आत्मा की बात नहीं सुनती हैं। यहाँ स्वामी और पति के रूप में परमात्मा का ध्यान किया गया है। पर भक्त सेवक ही है। यदि परमात्मा उसका पति है तो वह कान्तावत् उसका आलिंगन नहीं करना चाहता है बरन् दासवत् उसकी सेवा करना चाहता है। इस प्रकार आध्यात्मिक प्रेम में काम की गंध भी नहीं है।

स्पष्ट है कि वियोगिनी का वर्णन रूपक मात्र है। रविदास कबीर की भाँति अपने को हरि की 'बहुरिया' या 'दुलहिन' नहीं समझते हैं। वे यहाँ अपनी वेदना की केवल उपमा दे रहे हैं।

६६

राग भैरो

भेष लियो पै भेद न जान्यो । अमृत लेइ विषै सो मान्यो । टेक ।

काम क्रोध में जनम गँवायो । साधु संगति मिलि राम न गायो । १।

तिलक दियो पै तपनि न जाई । माला पहिरे घनेरी लाई । २।

कह रैदास मरम जो पाऊँ । देव निरंजन सत कर ध्याऊँ । ३।

शब्दार्थ—भेष = साधु की वेश-भूषा । भेद = रहस्य, तत्त्वज्ञान ।
अमृत = आत्मा । विषै = विषय, इन्द्रियजन्य विषय । तपनि = ताप, जलन ।
घनेरी = अतिशय । लाई = आग लगाई । मरम = रहस्य ।

विशेष—यह न समझना चाहिए कि इस पद में कबीर-वाणी की भाँति साधु-वेश, तिलक तथा माला की अवहेलना की गई है। रविदास यहाँ इन सब का वास्तविक रहस्य समझाते हैं। तिलक वह है जिससे हृदय की तपन चली जाती है। वेश वह है जिससे भेद जाना जाता है। रहस्य जानने पर पिंड और आत्मा का ज्ञान होता है; संसार और सत् का भेद प्रतीत होता है। फिर संसारी शारीरिक वेश में सजावट नहीं पसन्द करता है। उसका वेश पीला हो जाता है अर्थात् निस्सार हो जाता है। माला वह है जिससे प्रेम बढ़े।

यदि मनुष्य आग लगाने का कार्य करता है तो माला उसके लिए व्यर्थ है । माला तो सकल जीव-जन्तु को प्रेम में समेटने का प्रतीक है । यह पद्म तत्त्व का द्योतक है जो सम्पूर्ण जगत् की माला बनाकर रखता है । ज्ञान हो जाने पर ज्ञानी भक्त माला, तिलक तथा भेष का वास्तविक अर्थ समझकर प्रयोग करते हैं । साधारण व्यक्ति इनके अर्थ को नहीं समझता है, अतएव वह इनका दुष्योग करता है । इसीलिए कुछ सन्त इनकी व्यर्थता बताते हैं । दार्शनिक रविदास के लिए इनका गुण ही गोचर होता है और वे इन्हें रूपक के स्थान पर प्रयोग करते हैं । उनके वास्तविक तिलक, माला, भेष आदि तो नाम अथवा ज्ञान है ।

६७

भाई रे राम कहाँ मोहि बताओ ।
सत राम ताके निकट न आओ । टेक ।
राम कहत सब जगत भुलाना, सो यह राम न होई ।
करम अकरम करनामय केसो, करता नावै सु कोई । १।
जा रामहि सबै जग जानै, भरम भुले रे भाई ।
आप आप तैं कोइ न जानै, कहै कौन सो जाई । २।
सत तन लोभ परस जीतै मन, गुना प्रश्न नहि जाई ।
अलख नाम जाको ठौर न कतहूँ, क्यों न कहो समुझाई । ३।
भन रैदास उदास ताहि ते, करता क्यों है भाई ।
केवल करता एक सही सिर, सत राम तेहि ठाई । ४।

तुलनीय पद—है कोई राम नाम बतावै । वस्तु अगोचर मोहि लखावै । टेक ।

राम नाम सब कोई बखानै । राम नाम मरम न जानै ॥
ऊपर की मोहि बात न भावै । देखे गावै तो सुख पावै ॥
कहौ कबीर कछु कहत न आवै । परचै बिन मरम को पावै ॥

शब्दार्थ—करमसु कोई = कर्म और अकर्म तथा करुणा से युक्त 'केशव' नाम कोई कर्त्ता है । अर्थात् भगवान् के नाना नामों का अर्थ नाना प्रकार के कामों का करने वाला है । यह कर्तृत्व नाम अर्थात् ज्ञान है । जाई = जाकर । प्रश्न = पूछताँछ । गुना = गुण-सम्बन्धी, सत्व, रज, तम सम्बन्धी । गुना प्रश्न का अभिप्राय है गुणों को जानकर उनसे मुक्ति पाने की जिज्ञासा । परस = छू कर । सही सिर = निश्चय ही ।

विशेष—इस पद में प्रत्यक्षतः अवतारवाद का विरोध किया गया प्रतीत होता है । परन्तु वस्तुतः इसमें अवतारवाद का प्रतिपादन है । अवतारवाद का सूक्ष्म अर्थ यह है कि अवतारधारी महापुरुषों के लोकहित कार्यों के कर्तृत्व पर विचार कर उनसे भक्ति में प्रेरणा लेना । वस्तुतः अवतार राम या कृष्ण नहीं है वरन् उनकी स्मृति अवतार है । रेविदास अवतारों को नाम से संबोधित करते हैं और उनकी कृति से अपनी भक्ति को पुष्ट करते हैं ! भक्त को यह जानना आवश्यक है कि मानव जाति के ही नहीं वरन् विश्व के इतिहास में कितने भक्त किस प्रकार का जीवन-यापन किए । इस प्रसंग में उन भक्तों के भगवान् को भी मान लेना अनिवार्य-सा हो जाता है ।

६८

राम भगत को जन न कहाऊँ, सेवा करूँ न दासा ।
जोग, जग्य, गुन कछू न जानूँ, ताते रहूँ उदासा । टेक ।
भगत हुआ तो चढ़े बड़ाई, जोग करूँ जग मानै ।
गुन हुआ तो गुनी जन कहै, गुनी आप को आनै । १ ।
ना मैं ममता मोह न महिया, ये सब जाहि बिलाई ।
दोजख भिस्त दोउ सम कर जानौँ, दुहूँ ते तरक है भाई । २ ।
मैं अरु ममता देखि सकल जग, मैं से मूल गँवाई ।
जब मन मसता एक एक मन, तबहि एक है भाई । ३ ।

कृस्न करीम राम हरि राघव, जब लग एक न पेखा ।
 बेद कतेब कुरान पुरानन, सहज एक नहि देखा ।४।
 जोइ जोइ पूजिय सोइ सोइ काँची, सहज भाव सत होई ।
 कह रैदास मैं ताहि को पूजूँ, जाके ठावँ नावँ नहि होई ।५।

शब्दार्थ—बड़ाई = महिमा । महिया = में । भिरत = बहिस्त, स्वर्ग ।
 तरक = असहकार, त्याग । पेखा = देखा । सति = सत्, परमतत्त्व । ठावँ = देश
 या आकाश या दिक् । नांव = नाम ।

विशेष—इस पद में भक्त की दैन्य-दशा तथा समदृष्टि के अतिरिक्त सगुण-
 निर्गुणातीत परम तत्त्व का वर्तमान होना बताया गया है ।

देखिए यह कितना सुन्दर न्याय-वाक्य है—

“यदि मैं भक्त होता हूँ तो मुझे बड़ाई मिलती है ।
 यदि बड़ाई आती है, तो मेरी भक्ति जाती है ।
 अतएव मैं राम का भक्त नहीं कहाता हूँ ।

धन्य है भक्तों कि भक्ति जो ख्याति से छू तक नहीं जाती है !
 अनाम तत्त्व ही परमार्थतः सत् है । उसी की उपासना रविदास करते हैं ।

६६

अबिगति नाम निरंजन देवा ।

मैं क्या जानूँ तुम्हरी सेवा । टेक ।

बाधूँ न बंधन छाऊँ न छाया ।

तुमहीं सेऊँ निरंजन राया ।१।

चरन पताल सीस असमाना ।

सो ठाकुर कैसे संपुट समाना ।२।

सिव सनकादिक अंत न पाये ।

ब्रह्मा खोजत जनम गँवाये ।३।

तोड़ूं न पाती पूजूं न देवा ।

सहज समाधि करूं हरि सेवा ।४।

नख प्रसाद जाके सुरसरि धारा ।

रोमावली अठारह भारा ।५।

चारों वेद जाके सुमिरत सांसा ।

भगति हेत गावै रैदासा ।६।

शब्दार्थ—संपुट = डिब्बा । अभिगति = अनिर्वचनीय । निरंजन = माया से निलिप्त ।

विशेष—इस पद में विराट् स्वरूप की कल्पना की गई है । तुलसीदास ने भी कहा 'पद पाताल सीस अंग धाया' और 'रोम राजि अष्टादस भारा' । देखिए रामचरितमानस लंकाकाण्ड १४वें दोहे के बाद । परमतत्त्व के स्वास-मात्र से चारों वेद निकले हैं—

अस्य महतो भूतस्य निश्वासितमेतच्चतुर्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वान्गिरस इतिहासः पुराणा विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानि व्याख्यानान्यस्यैवै तानि निश्वासितानि । बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।१०

रविदास-जैसे ज्ञानी भक्त के लिए मूर्ति-पूजा की आवश्यकता न थी । वे प्रतिपल विराट् पुरुष को मानसिक पूजा करते रहते थे ।

७०

राग सारंग

जग में वेद वेद मानीजै ।

इनमें और अकथ कछु औरे,

कहौ कौन परिकीजै । टक ।

भौजल व्याधि असाधि प्रबल अति,

परम पंथ न गहीजै ।१।

पढे-गुने कछु समुझि न परई,

अममव पद न लहीजै ।२।

चखविहीन करतारि चलतु हैं,
तिनहि न अस भुज दीजै ।३।
कह रैदास विवेक तत्त त्रिनु,
सब मिलि नरक परीजै ।४।

शब्दार्थ—वेद = वैद्य, संसार-दुःख तथा पाप का नाशक । अकथ = अनिर्वचनीय परमात्मतत्त्व । परिकीजै = प्रतीति करेगा । भोजल = भवसागर । असाधि = असाध्य । व्याधि = रोग । परम पथ = वह मार्ग जो परमात्मतत्त्व तक जाता है । गहीजै = ग्रहण करता है । लहीजै = पाते हैं । चखविहीन = अंधा । करतारि चलतु हैं = ताली के इशारे चलते हैं । तिनहि न अस भुज दीजै = ऐसी सहायता उनको न दीजिये ।

विशेष—इस पद को कुछ लोग वेद-विरोधी भावना से ओत-प्रोत समझते हैं । पर कई स्थलों पर निगम, आगम तथा वेद-पुराण-उपनिषद् आदि को साक्षी देकर रविदास सिद्ध करते हैं कि वे वेद-विरोधी नहीं हैं । वेद का यहाँ अर्थ विशेषतः कर्मकाण्ड से है । इस अर्थ में वेद की प्रधानता वेदान्ती भी नहीं मानते हैं । रविदास का अभिप्राय केवल कोरे वेद-पाठियों से हैं जिन्हें अनुभव नहीं हुआ है । अनिर्वचनीय तत्त्व पढ़ने से हृदययंगम नहीं होता है । अनुभव से वह परम पथ मिल सकता है जो विवेक तत्त्व तक पहुँचा दे । अंधों की भाँति कर्मकाण्डी दूसरों के संकेत पर चलते हैं । दार्शनिक तथा वेदान्ती अपने पैरों पर खड़े होते हैं और स्वानुभूतिपूर्वक ही सब काम करते हैं । कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड में यही अन्तर है जिसे शङ्कराचार्य तथा रविदास ने व्यक्त किया है ।

‘पढ़े-गुने’ की निंदा रविदास ने कई स्थलों पर की है । ‘पढ़ना-गुनना’ एक पारिभाषिक शब्द है । किसी वेद को प्रतिदिन पढ़ना ‘पढ़ना’ या स्वाध्याय है । गुनना का अर्थ रटना है । जेमे आजकल मनोविज्ञान के आचार्य रटने की निंदा करते हैं वैसे स्वाध्याय तथा रटने की आलोचना सन्त-कवियों ने भी की है । पर आज मनोविज्ञान में पढ़ने का व्यापक अर्थ है । सत्संग या गुरु से कुछ

सीखना; अपने अनुभव से सीखना आदि भी पढ़ना है। इसकी आलोचना रविदास ने नहीं की है। इसके अतिरिक्त वेदान्त अर्थात् परम तत्व के विषय में पढ़ने की भी शिकायत नहीं है। देखिए पद ७८। वेदान्त का पढ़ता-गुनना रविदास को मान्य होगा क्योंकि वह विवेकतत्व को समझने के अतिरिक्त कुछ और नहीं है।

७१

बापुरो सत रैदास कहै रे।

ज्ञान बिचार चरन चित लावै, हरि की सरनि रहै रे। टेक।

पाती तोड़े, पूजि रचावै, तारन तरन कहै रे।

मूरति माहि बसै परमेशुर, तौ पानी माहि तिरै रे। १।

त्रिविधसंसार कौन बिधि तिरबौ, जे दृढ़ नाव न गहै रे।

नाव छाड़ि रे डूंगे बसे, तौ दूना दुःख सहै रे। २।

गुरु को सबद अरु सुरति कुदाली, खोदत कोई रहै रे।

राम कहहुकै न बाढ़ै आपो, सोने कूल बहै रे। ३।

भूठी माया जग डहकाया, तौ तिन ताप दहै रे।

कह रैदास राम जपि रसना, काहु के संग न रहै रे। ४।

शब्दार्थ—डूंगे = छोटी नाव। सुरति = ज्ञान की स्मृति। तिन = तीन—
‘दैहिक दैविक भौतिक तापा’—तुलसी। अथवा १ आध्यत्मिक दुःख
२ आधिभौतिक दुःख तथा ३ आधिदैविक दुःख। कहहुकै = कह कर।
न बाढ़ै आपो = आपा अर्थात् अहङ्कार को न बढ़ाओ। सोने कूल = सुन्न या
शून्य के तालाब में। बहै = बहे। तारन तरन = तारण-तरण, तारने
वाला और तरने वाला।

विशेष—इस पद से कुछ लोग यह अन्तर्कथा निकालते हैं कि रविदास
ने शालग्राम की मूर्ति को त्रिवेणी में पण्डों के सामने तैरा दिया था। किन्तु

डा० बड़थवाल अपने ग्रन्थ में (The Nirguna School of Hindi Poetry पृ० 70) में इस का मूर्ति-पूजा-विरोधी अर्थ लेते हैं। मेरे विचार से रविदास मूर्ति-पूजा के विरोधी नहीं थे। वे प्रारम्भिक अवस्था में इसकी महत्ता को स्वीकार करते थे। सिद्धों के लिए भी मूर्ति-पूजा नितांत हेय नहीं है क्योंकि उस अवस्था में सर्वत्र हरि ही गोचर होते हैं। रविदास स्वयं नामदेव, कबीर तथा बीठल के चमत्कारपूर्ण कार्य का वर्णन करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि वे स्वयं मानते थे कि भक्त चमत्कारपूर्ण कार्य कर सकता है। उन्होंने सम्भवतः मूर्ति तैराने का या ऐसा ही अन्य चमत्कार दिखलाया हो क्योंकि उनकी जोगी, गुनी एवं भक्त तथा :सिद्ध के रूप में ख्याति बढ़ चली थी जिससे वे स्वयं घबड़ाते थे और ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि उनका आपा मिट जाय क्योंकि सब कुछ भगवान करता है। भक्त-भगवान के लिए कुछ करना असम्भव नहीं है। खेमदास जी का कथन सत्य प्रतीत होता है—

निगम उचारे द्विज सारे पचि हारे तब,

पानी माँहि पाहन की प्रतिमा तिराई जी ।

—भक्तवचसी

७२

केहि बिधि अब सुमिरौं रे, अति दुर्लभ दीनदयाल ।

मैं गहा बिषई अधिक आतुर, कामना की भाल । टेक ।

कहा बाहर डिभ कीये, हरि कनक कसौटीहार ।

बाहर भीतर साखि तूँ, म कियो ससौ अँधियार । १ ।

कहा भयो बहु पाखँड कीये, हरि हृदय सपने न जान ।

जो दारा बिभिचारनी, मुख पतिव्रत जिय आन । २ ।

मैं हृदय हारि बैठ्यों हरी, सो पै सूर्यो न एको काज ।

भाव भगति रैदास दे, प्रतिपाल करि मोहि आज । ३ ।

शब्दार्थ— भाल = समूह, झुण्ड । डिभ = डिब = पाखण्ड । कसौटीहार = पारखी । साखि = दासी । जिय आन = हृदय में अन्य है अर्थात् हृदय में

परपुरुष से रमण की भावना है । प्रतिपाल करि = पालन-पोषण करो, या रक्षा करो । म = मुझे । ससा, शशक अर्थात् शङ्का । शंका को संत प्रायः शशक या ससा कहते हैं । देखिए बड़ध्वाल के निर्गुन स्कूल आव् हिन्दी प्योद्री का अनुवाद पृ० ३८० । अंधियार = अंधकार ।

विशेष—इस पद में जीव परात्पर सत् के आधीन कर दिया गया है । जब सत् का साक्षात्कार हो जाता है तो फिर मनुष्य को अपना जीवन बड़ा पतित प्रतीत होता है । उसे असाधारण अपराध तथा दोष अपने चरित में दीख पड़ते हैं । मनोविश्लेषणशास्त्र अभी ऐसा नहीं बना है जिसमें इसकी सम्यक् मीमांसा हो सके । भक्त जितना भगवान् के समीपस्थ होता जाता है उतना ही वह अपने को कर्तृत्व से मुक्त करता जाता है और भगवान् को ही एकमात्र कर्त्ता मान लेता है । इस पद की रचना के समय रविदास को कोई विपत्ति पड़ी होगी । इसी से उन्होंने 'आज' शब्द का यहाँ प्रयोग किया है । 'अब' से अभिप्राय है जब साक्षात्कार हो गया है अर्थात् तत्त्वोपलब्धि हो गई है ।

७३

चल मन हरि चटसाल पढ़ाऊँ । टेक ।
 गुरु की साटि ज्ञान का अच्छर ।
 बिसरै तो सहज समाधि लगाऊँ । १ ।
 प्रेम की पाटी सुरति की लेखनी ।
 ररौ ममौ लिखि आँक लखाऊँ । २ ।
 येहि विधि मुक्त भये सनकादिक ।
 हृदय बिचार प्रकास दिखाऊँ । ३ ।
 कागद कँवल मति-मसि करि निर्मल,
 बिन रिसना निसदिन गुन गाऊँ । ४ ।
 कह रैदास राम भजु भाई ।
 संत साखि दे बाहुरि न आऊँ । ५ ।

शब्दार्थ—हरि-चटसाल = वह पाठशाला जहाँ हरि पढ़ाए जाते हैं अर्थात् जहाँ ज्ञान-विज्ञान एवं तत्त्वविज्ञान पढ़ाया जाता है । साटि = छड़ी । सहज समाधि = तत्त्वानुभूति । सुरति = अनुभूति की स्मृति । ररी ममौ = राम-राम । अंक = अंक । लखाऊँ = दिखाऊँ । कँवल = हृदय-कमल । मति-मसि = बुद्धि-रूपी स्याही ।

विशेष—१. इस पद से रविदास-कालीन युग की शिक्षा-पद्धति पर प्रकाश पड़ता है । गुरु का कार्य छड़ी ही करती थी अर्थात् पीट-पीट कर पाठ पढ़ाया जाता था । बच्चों से पहले पट्टी पर और तत्पश्चात् कागज पर लिखाया जाता था । अक्षर और अंक दोनों साथ-साथ सिखाये जाते थे ।

२. रविदास स्वयं निरक्षर नहीं प्रतीत होते हैं । इस पद में उन्होंने अपना पाठशालीय ज्ञान रखा है । अपढ़ व्यक्ति पठन-पाठन की क्रिया को इस प्रकार से वर्णन नहीं कर सकता है जिस प्रकार से रविदास ने किया है । रविदास की शिक्षा अधिकांशतः धर्मशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र की थी, यद्यपि उनको अंकगणित, वैद्यक, संगीत आदि का ज्ञान भी था और इनकी कुछ न कुछ शिक्षा उनको मिली थी । कबीर की भाँति वे अपने को अपढ़ नहीं कहते हैं । फिर भी ऐसा पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता जिसके आधार पर यह निर्विवाद कहा जा सके कि रविदास शिक्षित थे । कबीर निरक्षर होते हुए भी रविदास-जैसी सभी बातें कहते हैं ।

७४

राग भैरौ

ऐसा ध्यान धरौं बरो बनवारी ।

मन पवन दै सुखमन नारी । टेक ।

सो जप जपौं जो बहुरि न जपना ।

सो तप तपौं जो बहुरि न तपना । १ ।

सो गुरु करौ जो बहुरि न करना ।

ऐसा मगँ जो बहुरि न मरना । २ ।

उलटी गंग जमुन में लावौ ।

बिनही जल मंजन द्वै पावौ । ३ ।

लोचन भरिभरि बिम्ब निहारौ ।

जोति विचारि न और बिचारौ । ४ ।

पिड परे जिव जिस घर जाता ।

सबद अतीत अनाहद राता । ५ ।

जा पर कृपा सोई भल जानै ।

गूँगे साकर कहा बखानै । ६ ।

सुन्न मँडल में मेरा बासा ।

ता ते जिव में रहौ उदासा । ७ ।

कह रैदास निरंजन ध्यावौ ।

जिस घर जावँ सो बहुरि न आवौ । ८ ।

नोट—ऐसा ही एक पद कबीर का है ।

पिड हुए जिउ किह पर जाता । सबद अतीत अनाहद राता ॥

जिन राम जान्या तिन्हीं पछान्या । ज्यों गूँगे साकर मन मान्या ॥

ऐसा ज्ञान कथै बनवारी । मन रे पवन दृढ़ सुखमन नाड़ी ॥

सो गुरु करहु जि बहुरि न करना । सो पद रवहु जि बहुरि न रवना ॥

सो ध्यान धरहु जि बहुरि न धरना । ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥

उलटी गंगा जमुन मिलावौ । बिनु जल संगम मन महि नावौ ॥

लोचा सम सरिहहु व्योहारा । तत्तु बिचारि क्या अवर बिचारा ॥

अप तेज वायु पृथमी अकासा । ऐसी रहिन रहौ हरि पासा ॥

कहे कबीर निरंजन ध्यावौ । तिन घर जाहु जि बहुरि न आवौ ।

कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ ३०६ पद नं० १४०

शब्दार्थ— बरो = पूजन करता हूँ । गंग = गंगा, इड़ा नाड़ी । जमुन = जमुना, पिगला नाड़ी । मंजन द्वै = दो नदियों का स्नान । साकर = शर्करा । बनवारी = श्री कृष्ण, बनमाला धारण करने वाला । बनमाला तुलसी, कुंद,

मंदार, पारिजात और कमल इन पाँच फूलों की बनी हुई माला को कहते हैं ।
पवन = प्राणायाम । सुखमन नारी = सुधुम्ना नाड़ी । अनाहद = अनाहत नाद,
बिना किसी के बजाये आपसे आप निरंतर होने वाला शब्द जो समाधिस्थ
योगियों को अपने शरीर के भीतर एक प्रकार की मधुर ध्वनि के रूप में
सुनायी पड़ता है और जिसके साथ वे तल्लीनता का अनुभव करते हैं ।
राता = रत, अनुरागमय ।

विशेष—गुरुग्रन्थ साहब में यह पद कबीर के ही नाम है । रविदास का
यह पद वस्तुतः कबीर की भावनाओं से प्रभावित है ।

७५

रथ को चतुर चलावन हारो ।

खिन हाकै खिन उभटै राखे, नहीं आन को सारो । टेक ।

जब रथ थकै सारथी थाकै, तब को रथहि चलावै ।

नाद बिद ये सब ही थाकै, मन मंगल नहि गावै । १ ।

पाँच तत्त को यह रथ साज्यो, अरधै उरध निवासा ।

चरन कमल लव लाइ रह्यो है, गुन गावै रेदासा । २ ।

शब्दार्थ—रथ = शरीर । खिन = क्षण में । उभटै = उभयतः दोनों तरफ
से । आन को = दूसरे को । सारो = सार, देख-रेख । सारथ = बुद्धि जो
इन्द्रियों और शरीर को चलाती है । नाद = शब्द, अनाहत नाद । बिद =
विन्दु, नाद का व्यक्त स्वरूप । अरधै = अर्ध । उरध = ऊर्ध्व ।

विशेष—यहाँ नाद और विन्दु को भी तुच्छ माना गया है । सुनना या
चखना तो मन से होता है । आत्मा तो यह कार्य करती नहीं । अतएव जब
शरीर थक गया और तत्प्रभाव से मन थक गया तो फिर नाद-विन्दु का
भोक्ता भी थक गया । अतएव आत्मा की अबन्धता तथा असङ्गता ही रविदास
को विशेषतः मान्य है, न कि कबीर की भाँति वह रहस्यवाद जहाँ नाद-विन्दु
का अनुभव होता है । पाश्चात्य-दर्शन की मन-शरीर-सम्बन्ध की समस्या

(Mind-body-relation) भारतीय अद्वैत-दर्शन में कभी नहीं थी क्योंकि यहां मन को ऐसा भौतिक कहा गया है जो एक इन्द्रिय है। शरीर तो कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों का संघात ही है। अतएव रविदास के अद्वैतवाद में भी मन-शरीर-सम्बन्ध नाम की कोई समस्या नहीं है। यहाँ आत्मा तथा शरीर के सम्बन्ध की समस्या है। शरीर नश्वर है। आत्मा अविनाशी है। दोनों के धर्म परस्पर विपरीत हैं। परमार्थतः शरीर रविदास के अनुसार भ्रम है। यह मायाकृत है। आत्मा ही सर्वत्र है। रविदास विवर्तवाद के समर्थक हैं।

तुलनीय—आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान् ।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥

कठोपनिषद् ३।३-४

७६

देहु कलाली एक पियाला, ऐसा अवधू है मतवाला । टेक ।

हैं रे कलाली तैं क्या किया, सिरका सा प्याला दिया । १ ।

कहै कलाली प्याला देऊँ, पीवनहारे का सिर लेऊँ । २ ।

चंद सूर दोउ सनमुख होई, पीवै प्याला मरै न कोई । ३ ।

सहज सुन्न में भाठी सरवै, पावै रैदास, गुरुमुख दरवै । ४ ।

शब्दार्थ—कलाली = कलवारिन, शराब बेचने वाली औरत । अवधू = साधु, वैरागी । सिरका = सिरका, एक प्रकार का रस है जो ईख के रस का धूप में पका कर खट्टा किया गया रूप है । यह चखने में इन्द्रियों की क्षुधा को और प्रज्वलित कर देता है । चन्द्र = इला नाड़ी । सूर = सूर्य, पिगंला नाड़ी । सरवै = पकती है । गुरुमुख दरवै = गुरुमुख के द्वारा ।

विशेष—इस पद में भक्त रविदास कलाली से शराब का प्याला माँग रहे हैं । कलाली यहाँ इच्छा है । शराब का प्याला है प्रेम या भववत्प्रेम ।

रविदास अपनी इच्छा से कहते हैं कि हे इच्छा, तू भगवान् का प्रेम कर । पर इच्छा प्रेम नहीं करती है । उल्टे वह रविदास को सिरका अर्थात् खट्टापन या भववान् के प्रति द्वेष देती है । इच्छा कहती है कि द्वेष देकर तुम्हारा सिर अर्थात् ज्ञान मैं ले लेती हूँ । जो प्रेम का प्याला पीता है उसे चन्द्र अर्थात् अमृतानन्द का साक्षात्कार होता है और सब कुछ सूर्य अर्थात् प्रकाश दिखाई देता है । ज्ञान की दो विशेषताएँ रविदास के अनुसार हैं । ज्ञान सूर्य की भाँति प्रकाश है और चन्द्र की भाँति अमृत या सुधा है । इस प्रकार ज्ञान एक शीतल प्रकाश है । इसका जो अनुभव करता है वह अमर हो जाता है । इस प्रेम का निर्माण सहज सुन्न अर्थात् परम तत्त्व के स्वाभाविक अनुभूति की भाँठी में होता है । स्वानुभूति ही भाँठी है । रविदास इस ज्ञान-चर्चा को गुरुमुख से पाते हैं ।

इस पद में रहस्यवाद नहीं प्रत्युत् विज्ञानवाद है । कबीर-युगीन होने के नाते रविदास कबीर की रहस्यात्मक भाषा से प्रभावित थे । पर यहाँ सूफी मत का ऊँची आभरण केवल अलंकार मात्र है । तथ्य तो परम अद्वैतवाद है । रविदास में कुछ रहस्यवाद भी है पर वह वैज्ञानिक रहस्यवाद है और केवल इसलिए रहस्यवाद है कि परम तत्त्व की किसी भी प्रकार से प्राप्त अनुभूति को रहस्यवाद कहते हैं । वस्तुतः रविदास ज्ञानी पहले और रहस्यवादी बाद के हैं ।

७७

सुकछु विचार्यो तातें मेरो मन थिर ह्वै गयो ।

हारे रंग लाग्यो तब बरन पलटि भयो । टेक ।

जिन यह पंथी पंथ चलावा ।

अगम गवन में गम दिखलावा । १ ।

अवरन बरन कहै जनि कोई ।

घट घट व्यापि रह्यो हरि सोई ।

जेइ पद सुन नर प्रेम पियासा ।

सो पद रमि रह्यो जन रैदासा । २ ।

शब्दार्थ—हारे रंग = हरि का रंग । पलटि भयो = बदल गया । पंथी = पथिक; साधक, संत । गवन = गमन, प्रयाण, गति । गम = गम्य, प्रवेश । जनि = जिसे । कोई = कुछ लोग । रमि रह्यो = रमते हैं, आनन्द लेते हैं ।

विशेष—इस पद में अनिर्वचनीयवाद तथा सर्वात्मवाद का सुन्दर समन्वय किया गया है । जिसे कुछ लोग अवर्णवर्ण कहते हैं वही घट-घट में व्याप्त है । कुछ विचार करने से ही मन स्थिर होता है । हरि के रंग में तभी रंग जाना पड़ता है और फिर अपना रंग बदल ही जाता है ।

७८

तेरा जन काहे को बोलै ।

बोलि बोलि अपनी भगति को खोलै । टेक ।

बोलत बोलत बढ़ै बियाधी, बोल अबोलै जाई ।

बोलै बोल, अबोल कोप करै, बोल बोल को खाई । १।

बोलै ज्ञान मान परि बोलै, बोलै बेद बड़ाई ।

उर में धरि धरि जब ही बोलै, तब ही मूल गँवाई । २।

बोलि बोलि औरहि समझावै, तब लगि समझ न भाई ।

बोलि बोलि समझी जब बूझी, काल सहित सब खाई । ३।

बोलै गुरु अरु बोलै चेला, बोल बोल की परतिति आई ।

कह रैदास मगन भयो जबही, तबही परम निधि पाई । ४।

शब्दार्थ—बोलै = परम तत्त्व के विषय में विचार प्रकट करना । बियाधी = झगड़ा । बोल = वक्ता । अबोल = मौन भक्त । मान परि बोलै = घमण्ड के साथ कहे ।

तुलनीय—वाष्कलिना च बाध्वः पृष्ठः सन्नवचनेनैव ब्रह्म प्रोवाचेति श्रूयते—‘स होवाचाधीहि भो इति स तूष्णीं बभूव । तं ह द्वितीये वा तृतीये वा वचन उवाच ब्रूमः खलु त्वं तु न विजानासि । उपशान्तोऽयमात्मा’ इति ।

शंकराचार्य का ब्रह्मसूत्रभाष्य ३।२।१७

तथा—

बोलना का कहिए रे भाई, बोलत बोलत तत नसाई ।
बोलत बोलत बढ़ै बिकारा, बिन बोल्या क्यू होइ विचारा ।
संत मिलै कछु कहिए कहिए, मिलै असंत मुष्टि करि रहिये ।
ग्यानीं सूं बोल्यां हितकारी, मूरिख सूं बोल्या भप मारी ।
कहै कबीर आधा घट डोलै, भना होइ तो मुगां न बोलै ।

कबीरप्रन्धावली पृष्ठ १०६ पद ६६ ।

विशेष—इस पद में परम तत्व को प्रबोध कहा गया है । वह निर्विशेष है । उपशान्त रहना ही उसका वर्णन है ।

७६

गोविंदे भवजल व्याधि अपारा ।
ता में सूझै वार न पारा । टेक ।
अगम घर दूर उर तर, बोलि भरोस न देहू ।
तेरी भगति अरोहन संत अरोहन, मोहि चढ़ाइ न लेहू । ।
लोह की नाव पखान बोभी, सुकिरित भाव बिहीना ।
लोभ तरंग मोह भयो काला, मोन भयो मन लीना ।२।
दीनानाथ सुनहु मम बिनती, कवने हेत विलंब करीजै ।
रैदास दास सन्त चरनन, मोहि अब अवनंबन दीजै ।३।

शब्दार्थ—वार न पारा = दोनों तट । उर तर = दूसरे तट पर । अरोह = सीढ़ी । अरोहन = चढ़ते हैं ।

विशेष—इसमें मोक्षशास्त्र तथा आचारशास्त्र का कुछ वर्णन है ।

८०

संत उतारैं आरती देव सिरोमनिए ।
उर अंतर तहाँ बैसे बिन रसना भनिए । टेक ।
मनसा मंदिर माहि धूप धुइये ।
प्रेम-प्रीति की माल राम चढ़इये ।१।

चहुँ दिसि दियना बारि जगमग हो रहिये ।
 जोति जोति सम जोती हिलमिल हो रहिये ।२।
 तन मन आतम बारि तहाँ हरि गाइये री ।
 भनत जन रैदास तुम सरना आइये री ।३।

शब्दार्थ—देव-सिरोमणिए = देवों में शिरोमणि । दियना = दीपक ।
 बारि = जलाकर । जोती = घी का दीप; जो किसी देवी-देवता के आगे
 जलाया जाता है । जोति = ज्योति । जोति = आत्मा जिसका स्वरूप ज्योति है ।
 बारि = जला कर ।

विशेष—इस पद में मानसिक पूजा का विधान किया गया है । मन मंदिर
 है । अहंकार धूप है । प्रेम माला है । ज्योति-स्वरूप आत्मा दीपक है ।

तुलनीय—कबीर भी इसी प्रकार की आरती करते हैं—

ऐसी आरती त्रिभुवन तारे,
 तेज पुंज तहाँ प्रान उतारे ।
 पानी पंच पहुन करि पूजा,
 देव निरंजन और न दूजा ।
 तन मन सीस समरपन कीन्हा,
 प्रगट जोति तहाँ आतम लीन्हा ।
 दीपक गान सबद धुनि घंटा,
 परम पुरिख तहां देव अनंता ।
 परम प्रकास सकल उजियारा,
 कहै कबीर मैं दास तुम्हारा ।

नोट—रविदास और कबीर का दार्शनिक मतभेद दोनों की आरती में
 स्पष्ट है । कबीर आरती में भी अनाहत नाद का घण्टा बजाते हैं । रविदास
 की आरती बिना नाद के ही है । इस प्रकार कबीर की आरती रहस्यवादी
 आरती है और रविदास की विज्ञानवादी ।

८१

जो तुम गोपालहि नहि गैहो ।
तो तुम काँ सुख में दुःख उपजै, सुखहि कहाँ ते पैहो । टेक ।
माला नाय सकल जग डहको, भूँठो भेख बनैहो ।
भूँठे ते साँचे तब होइहौ, हरि की सरन जब ऐहो ।१।
कनरस बतरस और सबै रस, भूँठहि मूड डोलैहो ।
जब लगि तेल दिया में बाती, देखत ही बुझि जैहो ।२।
जो जन राम नाम रंग राते और रंग न सुहैहो ।
कह रैदास सुनो रे कृपानिधि, प्रान गये पछितैहो ।३।

शब्दार्थ—गैहो = शरण पकड़ना । कनरस = कान का रस, श्रवण का रस । बतरस = बात करने का रस । और सबै रस = अन्य इन्द्रियों का रस । दीपक = शरीर । तेल = स्नेह, जीव । बाती = अहंकार । मूड डोलना = सिर हिलाकर आनंद प्रकट करना ।

विशेष—राम की शरण के बिना इन्द्रियों का आनन्द भूठा है । जब राम की शरण में मनुष्य पहुँच जाता है तो वह भूठ से सत्य हो जाता है ।

८२

आज दिवस लेऊँ बलिहारा ।
मेरे घर आया राम का प्यारा । टेक ।
आँगन बँगला भवन भयो पावन ।
हरिजन बैठे हरिजस गावन ।१।
करूँ डंडवत चरन पखारूँ ।
तन मन धन उन ऊपरि वारूँ ।२।
कथा कहैं अरु अर्थ बिचारैं ।
आप तरैं औरन को तारैं ।३।
कह रैदास मिलैं निज दास ।
जनम जनम के काटै पास ।४।

नोट—कबीर का भी इससे मिलना-जुलना एक पद है ।

आज दिन के मैं जाऊँ बलिहारी ।

पीतम साहेब आये मेरे पहुँचा, घर आंगन लगे सुहोना ।

सब प्यास लगे मंगल गायन, भये मगन लखि छवि मनभावन ।

चरन पखाऊँ बदन निशारूँ, तन-मन धन सब साईँ पर वारूँ ।

जा दिन पाये पिया धन सोई, होत अनंद परम सुख होई ।

सुरन लगी सन नाम की आसा, कहै कबीर दासन के दासा ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत कबीर पृष्ठ २८३

शब्दार्थ—राम का प्यारा = साधु, भक्त । निज दास = अपने भक्त ।

विशेष—इस पद में सत्संग तथा अतिथि-सत्कार का वर्णन है । लोग इसे नर-पूजा कहेंगे । नर-पूजा यह अवश्य है । पर अन्य प्रकार की नर-पूजा से यह भिन्न है । वैसे नर-पूजा दार्शनिक के लिए दोष है क्योंकि इसमें पूजक तथा पूज्य दोनों के व्यक्तित्व का गतन होता है । पूजक का इसलिए कि वह अपने को स्वयं नहीं जानता और दूसरों को ईश्वरतुल्य मानता है । पूज्य का इसलिए कि वह स्वयं जिस रूप में अनुभव-कर्त्ता है उस रूप में नहीं पूजा जाना वरन् उस रूप में पूजा जाता है जिस रूप में वह दूसरों का उपकार करता है, चमत्कारपूर्ण कार्य दिखाता है । साधु-भक्ति इस प्रकार की नर-पूजा के दोषों से मुक्त है । यह अन्ध विश्वास नहीं है वरन् अन्धविश्वास को मिटाने वाली है । इससे सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है । इससे जब तक लोग सन्त की सेवा नहीं करते तब तक उन्हें ज्ञान प्राप्त नहीं होता है । रविदास साधु का पैर इसलिए धोते हैं कि वह हरिकथा कहता है और अर्थ विचारता है । सन्त और अनन्त में रविदास भेद मानते ही नहीं हैं । फिर आगन्तुक भक्त के लिए अतिथि-सत्कार रूप से भी तो सेवा करनी चाहिए ।

८३

ऐसे जानि जगो रे जीव ।
 जपि ल्यो राम, न भरमो जीव । ऐका
 गनिका थो किस करमा जोग ।
 पर-पुरुष सो रमती भोग । १ ।
 निसि बासर दुस्करम कमाई ।
 राम कहत बैकुंठे जाई । २ ।
 नामदेव कहिये जाति कै ओछ ।
 जाको जस गावै लोक । ३ ।
 भगति हेत भगता के चने ।
 अंकमाल ने बठिल मिले । ४ ।
 कोटि जग्य जो कोई करै ।
 राम नाम सम तउ न निस्तरै । ५ ।
 निरगुन का गुन देखौ आई ।
 दही सहित कवीर सिधायै । ६ ।
 मोर कुचिल जाति कुचिल में बास ।
 भगत चरन हरि चरन निवास । ७ ।
 चारिउ वेद किया खंडौति ।
 जन रैदास करै डंडौति । ८ ।

अन्त रूपायँ—

१—गणिका—पौराणिक कथा है कि गणिका अपने शुक को राम-नाम पढ़ाने के कारण तर गई ।

२—नामदेव की कथा ६वें पद में दी गई है ।

३—बीठलदास रैदासी भक्त का वर्णन नाभादास ने किया है । पर बीठल जिसका वर्णन स्वयं रविदास कर रहे हैं रविदासी नहीं हो सकते हैं । कि वदन्तियों के आधार पर इतना ही पता चलता है कि बीठल भक्त माली जाति

के थे । ध्यान-विभोर होने से वे एक दिन राजा के यहाँ माला न पहुँचा सके । उस दिन भगवान् ने स्वयं उनका रूप धर कर अंकमाल या हार पहुँचा दिया ।

✕—कबीर का वर्णन ६वें पद में दिया गया है । इस पद में कबीर के शव के बारे में चमत्कारपूर्ण प्रसिद्ध कथा का समर्थन रविदास द्वारा हो रहा है कि कबीर सशरीर स्वर्ग गए थे ।

शब्दार्थ—कुचिल = कुचैल, मैला, गन्दा । डंडौति = दण्डवत्, प्रणाम । खंडौति = खण्डन ।

विशेष—‘चारिउ वेद किया खंडौति’ कबीर के लिये कहा गया है । इस पद को कुछ लोग वेद-विरोधी समझते हैं । चारों वेद का खण्डन करने वाले कबीर की प्रशंसा का लोग यह अर्थ लगाते हैं कि रविदास भी वैसी आलोचना करते थे । पर एक संत दूसरे संत के अवगुण को जानते, कहते हुए भी ध्यान नहीं देता है । वह केवल गुणग्राही है । कबीर के अन्य सिद्धान्तों के प्रति रविदास श्रद्धा रखते थे, पर उनकी वेद-निंदा के विषय में वे उदासीन थे और स्वयं वेद को प्रमाण मानते थे ।

८४

हरि बिन नहि कोइ पतित पावन, आनहि ध्यावे रे ।
हम अपूज्य, पूज्य भये हरि ते, नाम अनूपम गावै रे । टेक ।
अष्टादस व्याकरण बखानै, तीनि काल षट जीता रे ।
प्रेम भगति अंतर गति नाहीं, ता ते घानुक नीका रे ।
ता ते भलो स्वान को सत्रू, हरि चरनन चित लावै रे ।
मूआ मुक्त बैकुंठ बास, जितत यहाँ जस पावै रे । २ ।
हम अपराधी नीच घर जनमे, कुटुंब लोग करै हाँसी रे ।
कह रैदास राम जपु रसना, कटै जनम की फाँसी रे । ३ ।

शब्दार्थ—आनहि = अन्य को । अष्टादस = १८ पुराण । तीनि काल = भूत, भविष्य तथा वर्तमान । षट् = षड्रिपु या षट् दर्शन, षड् दर्शन ये हैं १ न्याय, २ वैशेषिक, ३ सांख्य, ४ योग, ५ पूर्व मीमांसा, ६ वेदान्त । १ काम २ क्रोध ३ लोभ ४ मद ५ मोह ६ मत्सर षट् रिपु हैं । धानुक = एक धुनिया स्वान को सत्रू = श्वान-शत्रु, डोम । जनम की फांसी = आवागमन का बन्धन ।

विशेष—रविदास को लोग हँसते थे । इसका भावुक वर्णन इस पद में इन्होंने किया है ।

८५

रे मन माछला संसार समुदे, तूँ चित्र विचित्र बिचारि रे ।
जेहि गाले गलिये ही मरिये, सो सग दूरि निवारि रे । टेक ।
जम तें डिगन, डोरि छै कंफन, परतिया लागो जानि रे ।
होइ रस लुबुध रमै यौ मूरख, मन पछितावै अजान रे । १ ।
पाप गुलीचा, धरम निबोली, देख देखि फल चीख रे ।
परतिरिया सँग भलो जौ सोवै, तो राजा रावन देख रे । २ ।
कह रैदास रतन फल कारन, गोविंद का गुन गाइ रे ।
काँचो कुंभ भरो जल जैसे, दिन दिन घटतो जाइ रे । ३ ।

शब्दार्थ—मन माछला = मन मछली है । संसार समुदे = संसार समुद्र है । गाले = मार्ग । निवारि = छोड़ दो । जम = यम, मृत्यु । तें = से । डिग = हिलना, डगना । डोरि = प्रेम-पुत्र । लुबुध = लोभी, लालची । गुलीचा = एक मीठा फल । निबोली = नीम का फल ।

विशेष—१. अवतारवाद के सिद्धान्त का रविदास ने दार्शनिक दृष्टि स्वीकार किया था । हम देख चुके हैं कि वे राम-नाम से दाशरथि राम का अर्थ नहीं लेते । 'फर भी यहाँ वे राम-रावण की कथा का उद्धरण दे रहे हैं ।

२. रविदास का निरीक्षण बड़ा सुन्दर था । 'काँचो कुंभ भरो जल जैसे दिन दिन घटतो जाइ रे' इस पंक्ति से स्पष्ट है कि रविदास अपने वातावरण का सुन्दर निरीक्षण करते थे ।

८६

केसवे बिकट माया तोर, ताते बिकल गति मति मोर । टेक ।
 सु विषंग सन कराल अहिमुख, असति सुटल सुमेष ।
 निरखि माखी बकै व्याकुल, लोभ कालर देख ।१।
 इंद्रियादिक दुःख दारुन, असंख्यादिक पाप ।
 तोहि भजन रघुनाथ अंतर, ताहि त्रास न ताप ।२।
 प्रतिज्ञा-प्रतिपाल प्रतिज्ञा-चिह्न, जुग भगति पूरन काम ।
 आस तोर भरोस है रैदास जै जै राम ।३।

शब्दार्थ—सु विषंग सन=सुन्दर विषयों के साथ । सुटल=सुन्दर ।
 माखी=सोनामाखी, धन । कालर=पट्टी ।

८७

कहाँ सूते मुग्ध नर काल के मँझ मुख ।
 तजिय बस्तु राम चितवत अनेक सुख । टेक ।
 असहज धीरज लोप, कृसन उधरंत कोप,
 मदन-भुवंग नहि मंत्र जंता ।
 विषम पावक ज्वाल ताहि बार न पार,
 लोभ की अयनी ज्ञान हंता ।१।
 विषम संसार ब्याल ब्याकुल तवै,
 मोह गुन विषै सँग बंधभूना ।
 टेरि गुन गारुडो मंत्र स्रवना दियो,
 जागि रे राम कहि कहि के सूता ।२।
 सकल सिम्रित जिते सत मति कहै तित्ती,
 हैं इनही परम गति परम बेता ।
 ब्रह्म ऋषि नारद संभु सनकादिक,
 राम राम रमत गये पार तेता ।३।

जजन जाजन जाप रटन तीरथ दान,
ओषधी रसिक गदमूल देता ।
नागदवनि जरजरी राम सुमिरन बरी,
भनत रैदास चेत निमेता ।

शब्दार्थ—सूते = सोए हो । मेंभ = मध्य । मदन-भुवंग = काम रूपी सर्प ।
अयनी = सेना । तवे = क्रोध से लाल है । गारुड़ी = सर्प-वैद्य, साँप का मंत्र
जानने वाला । गदमूल देता = रोग पैदा करती है । नागदवनि = नागदमन,
छोटे आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी के पास साँप नहीं जाते हैं ।
जरजरी = जीर्ण-शीर्ण । बरी = मुक्त । चेत-निमेता = चित्त को नियंत्रित करने
वाला ।

दृष्ट

कोई सुमार न देखूँ, ये सब उपल चोभा ।
जा को जेता प्रकास ताको तेति ही सोभा । टेक ।
हम हिथे सीखि सीखै हम हिथे माड़े ।
थोरे ही इतराइ चलै पतिसाही छाड़े । १।
अति ही आतुर वह काची ही तोरे ।
बूड़े जल पैसे नहीं, पड़े रे खोरे । २।
थोरे थोरे मुसियत परायो धना ।
कह रैदास सुन संत जना । ३।

शब्दार्थ—सुमार = सुमार्ग । उपल = उपरि, ऊपर से, बाहरी । चोभा =
भोजन जो महान् अवसरों पर दिया जाता है । सीखि = शिक्षा । माड़े =
मानें । पतिसाही छाड़े = बादशाही दिखाते हैं । पैसे = बैठे । खोरे = स्नान
करता है । बूड़े जल = गहरे जल । पड़े = लेटकर । गहरे जल में प्रवेश नहीं
करता है । लेटकर थोड़े जल में ही स्नान करता है । काची = कच्ची ।

विशेष—इस पद में पाखंडी संत का वर्णन किया गया है जो भोजन
के लिए संत बना है उसकी शोभा उतनी ही मानी जाती है जितना उसका प्रकाश

या आभा होती है । यदि उसै हम हृदय में मानतै हैं और उसकी शिक्षा लेते हैं तो वह इतराता है और बड़प्पन दिखाता है । वह अत्यन्त आतुर है और कच्चा ही ज्ञान रखता है । गम्भीर रहस्य में प्रवेश नहीं करना चाहता है । केवल ऊपरी ज्ञान में रहता है । दूसरे का धन अपहरण करता है । इसमें अर्थात् के लक्षणा दिये गए हैं ।

८६

पहिले पहरै रैन दे बनिजरिया, तँ जनम लिया संसार बे ।
 सेवा चूकी राम की, तेरी बालक बुद्धि गँवार बे ।१॥
 बालक बुद्धि न चेता तूँ, भूला माया जाल बे ।
 कहा होइ पाछे पछिताये, जब पहिले न बाँधी पाल बे ।२॥
 बीस बरस का भैया अयाना, याँभि न सका भाव बे ।
 जन रैदास कहै बनिजरिया, तँ जनम लिया संसार बे ।३॥
 दूजे पहरै रैन दे बनिजरिया, तूँ निरखन चाल्यो छाँह बे ।
 हरि न दामोदर ध्याइया बनिजरिया, तँ लेय न सका नाँव बे ।४॥
 नाँव न लीय आगुन कीया, जस जोवन दे तान बे ।
 अपनी पराई गिनी न काई, मंद करम कमान बे ।५॥
 साहिब लेखा लेसी तूँ भरि देसी, भरि परै तुझ ताँह बे ।
 जन रैदास कहै बनिजरिया, तूँ निरखन चला छाँह बे ।६॥
 तीजे पहरै रैन दे बनिजरिया तेरे ढिलड़े पड़े पिय प्रान बे ।
 काया रवनि का करै बनिजरिया, घट भीतर बसे कुजान बे ।७॥
 एक बसे कायागढ़ भीतर, पहला जनम गँवाय बे ।
 अक्की बेर न सुकिरिन कीया, बहुरि न यह गढ़ पाय बे ।८॥
 कँपी देह काया गढ़ खना, फिरि लगा पछितान बे ।
 जन रैदास कहै बनिजरिया, तेरे ढिलड़े पड़े प्रान बे ।९॥
 चौथे पहरै रैन दे बनिजरिया, तेरी कंपन लागी देह बे ।
 साहिब लेखा मांगिया बनिजरिया, तेरी छाड़ि पुरानी थेह बे ।१०॥

छाड़ि पुरानी जिह् अजाना, बालदि हाँकि सबेरियाँ बे ।
जम के आये बाँधि चलाये, बारी पूगी तेरियाँ बे ।११।
पंथ अत्रेला बराउ हेला, किसकी देह सनेह बे ।
जन रैदास कहै बनिजरिया, तेरी कंपन लागी देह बे ।१२।

नोट—यह वस्तुतः चार पद है । परन्तु परस्पर सम्बद्ध होने के कारण चारों पद एक ही पद मान लिये गये हैं ।

शब्दार्थ—पाल = (१) नौका की पाल, (२) प्रेय । बालदि = (१) बैल, (२) जीव । बारी पूरी = तेरी पारी पूरी हो गई । बराउ = बड़ा । हेला = कठिन ।

विशेष—यह चेतावनी है । मनुष्य की बाल्यावस्था, तारुण्यावस्था प्रौढ़त्वावस्था तथा वार्धक्यावस्था का इसमें वर्णन है । सम्पूर्ण जीवन को एक यामिनी समझकर चार प्रहरों में बांटा गया है । प्रत्येक प्रहर एक अवस्था का सूचक है ।

६०

बरजि हो बरजिवो उतूले माया ।

जग खेया महाप्रबल सबही बस करिये, सुर नर मुनि भरमाया ।टेका।
बालक बृद्ध तरुन अरु सुन्दर, नाना भेष बनावे ।
जोगी जतीं तपी सन्यासी, पंडित रहन न पावे ।१।
बाजीगर के बाजी कारन, सबको कोतिग आवे ।
जो देखे सो भूलि रहै, वा का चेला मरम जो पावे ।२।
षड ब्रह्मण्ड लोक सब जीते, येहि बिधि तेज जनावे ।
सब ही का चित्त चोर लिया है, व के पाछे लागे धावे ।३।
इन बातन से पचि मरियत है, सब को कहै तुम्हारी ।
नेक अटक किन राखो केसो, मेटो बिपति हमारी ।४।
कह रैदास उदास भयो मन, भाजि कहाँ अब जेये ।
इत उत तुम गोबिंद गोसाईं, तुमहीं माहि समैये ।५।

शब्दार्थ—बरजिहौ = छुड़ाओ । बरजिवी = छुड़ाओ । उतूले = अतुल्य ।
खेया = खाया । कौतुग = कौतुक, तमाशा । ब्रह्मण्ड = ब्रह्मा । षड = षंड,
शिव । इत-उत = यत्र-तत्र सर्वत्र ।

तुलनीय पद—बाजीगर डंक बजाई । सब खलक तमाशे आई ॥

बाजीगर स्वांग सकेला । अपने रंग रवै अकेला ॥

कबीर अथावली पृष्ठ २६८ पद ११६ ।

विशेष—इस पद में माया का क्षेत्र वर्णित है ।

६१

पार गया चाहै सब कोई ।

रहि उर वार पार नहि होई । टेक ।

पार कहै उर वार से पारा ।

बिन पद परचे अमै गंवारा । १ ।

पार परमपद मंभ मुरारी ।

तामैं आप रमै बनवारी । २ ।

धूरन ब्रह्म बसै सब ठाई ।

कह रैदास मिले सुख साई । ३ ।

शब्दार्थ—उर वार = इस पार (उपरवार) । पार = उस पार ।

विशेष—इस पद में सर्वात्मवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है ।
स्वर्ग-नरक कहीं अन्यत्र दूसरे लोक में नहीं हैं । मुरारि सर्वत्र है । उन्हीं में
इस पार और उस पार दोनों हैं । पद-परिचय उस पार होना है । पद का
परिचय न होना इस पार है ।

६२

यह अँदेस सोच जिय मेरे ।

निसि बासर गुन गाऊँ तेरे । टेक ।

तुम चितत मेरी चितहु जाई ।

तुम चितामनि हौ इक नाई । १ ।

भगति हेत का का नहि कीन्हा ।

हमरी बेर भये बल हीना । २।

कह रैदास दास अपराधी ।

जेहि तुम द्रवौ सो भगति न साधी । ६।

शब्दार्थ—अँदेस = चिन्ता, संशय ।

विशेष—प्रभु की चिन्ता से चिन्ता नष्ट हो जाती है । यह कितनी सुन्दर भावना कितने सुन्दर ढंग से रविदास जी ने व्यक्त की है !

६३

गोविंदे तुम्हारे से समाधि लागी ।

छर भुअंग भस्म अंग संतत बैरागी । टेक ।

जाके तन नैन असृत बैन, सीस जटाधारी ।

कोटि कला ध्यान अला, मदन अंतकारी । १।

जाके लील बरन अकल ब्रह्म, गले रुंडमाला ।

प्रेम मजन फिरत नगन, संग सखा बाला । २।

अस महेस बिट भेस, अजहूँ दरस आसा ।

केसे राम मिलौ तोहि, गावै रैदास । ३।

शब्दार्थ—समाधि = अनन्ध ध्यान । भुअंग = सर्प । संतत = सदा । मदन अंतकारी = कामदेव का नाश करने वाले । लील = नीला । अकल = निरवयव, अखण्ड ।

विशेष—इस पद में रविदास परम सत्त्व के गोविंद, महेश तथा राम नाम देकर तीनों देवों की एकता प्रतिपादित कर रहे हैं । विरक्तों के आदर्श सदा शिव जी हैं । बरोक्ष रूप से इस पद में विरक्त संत के लक्षण दिये गए हैं । वह सदा विरक्त रहता है । उसकी बाणी असृत-सी रहती है । उसके तीन नेत्र हैं अर्थात् उसे भूत, भविष्य तथा वर्तमान का ज्ञान रहता है । वह मदन का नाश करता है और प्रेम-मजन होकर सखा तथा बालकों के साथ घूमता है । उसके शरीर पर भस्म, शिर पर जटा, गले में माला, हृदय में भुजंग रहते हैं । भस्म

का तात्पर्य माया से मुक्त होना है । जटा का अभिप्राय समष्टि ज्ञान है । माला से प्रेम का बोध होता है । भुजंग से परम आनन्द में तल्लीनता का आशय है । साधु कोटि कल्प भी ध्यान करता है तो भी वह अल्प ही होता है अर्थात् उसे ध्यान से कभी तृप्ति नहीं होती है । इस प्रकार वस्तुतः संत के सभी लक्षणों को शिव जी के बहाने रविदास ने व्यक्त किया है ।

६४

माया मोहिला कान्हा, मैं जन सेवक तेरा । टेक ।

संसार प्रपंच में व्याकुल परमानंदा ।

ब्राहि ब्राहि अनाथ गोविंदा । १ ।

रैदास बिनवै करजोरी ।

अविगत नाथ कवन गति मोरी । २ ।

शब्दार्थ—मोहिला = मोह लिया, विमूढ़ कर दिया ।

विशेष—कौन गति मेरी होगी ? यह दार्शनिक के लिए अनिवार्य प्रश्न है । रविदास तथा सभी अन्य भारतीय दार्शनिक इस प्रश्न का उत्तर अपने वाणी और शील से अवश्य देते हैं ।

६५

राग जैतिश्री

सब कछु करत न कहौं कछु कैसे ।

गुन बिधि बहुत रहत ससि जैसे । टेक ।

दरपन भगन अनिल अलेख जस ।

अंध जलधि तिबिब देखि तस । १ ।

सब आरम अकाम अनेहा ।

विधि निषेध कीयौ अनेकेहा । २ ।

यह पद कहत सुनत जेहि आवै ।

कह रैदास सुकृति को पावै । ३ ।

शब्दार्थ—गुण.....जैसे = चन्द्रमा में अनेक गुण हैं फिर भी वह शीतल रहता है, गुण के महत्व से उत्तेजित नहीं होता है । अनिल = हवा । अनेकेहा = अनेक प्रकार से । सुकृति को पावे = सुकृती है । मनीह = निश्चेष्ट । सब आरंभ = सब वस्तुओं का आदि ।

६६

तेरे देव कमलपति सरन आया ।
 मुझ जनम सँदेह भ्रम छेदि माया । टेक ।
 अति संसार अपार भवसागर,
 जामें जनम मरमा सँदेह भारी ।
 काम भ्रम क्रोध भ्रम लोभ भ्रम मोह भ्रम,
 अनत भ्रम छेदि सम करसि यारी । १।
 पंच संगी मिलि पौड़ियो प्रान यों,
 जाय न सक्यो बैराग आग ।
 पुत्र वरग कुल बंधु ते भारजा,
 भरबै दसो दिस सिर काल लामा । २।
 भगति चितऊँ तो मोह दुख व्यापही,
 मोह चितऊँ तो मेरी भगति जाई ।
 उभय सँदेह मोहि रैन दिन व्यापही,
 दीनदाता कहुँ कवन उपाई । ३।
 चपल चेतो नहीं बहुत दुख देखियो,
 काम बस मोहिहो करम फंदा ।
 सक्ति संबंध कियो ज्ञान पद हरि लियो,
 हृदय बिस्वरूप तजि भयो अंधा । ४।
 परम प्रकास अविनासी अवमोचना,
 निरखि बिज रूप बिसराम पाया ।
 बंदत रैदास बैराम पद चितना,
 जपौ जगदोस गोविंद राया । ५।

शब्दार्थ—यारी = हे मित्र या सहायक । पंच संगी = पांच कर्मेन्द्रियां ।
अपल = शीघ्र ।

६७

त्राहि त्राहि त्रिभुवन पति पावन ।
अतिसय सूल सकल बलि जावन । टेक ।
काम क्रोध लंपट मन मोर ।
कैसे भजन करूँ मैं तोर । १ ।
विषम बिहंगम दुंद नकारी ।
असरनसरन सरन भौहारी । २ ।
देव देव दरबार दुआरै ।
राम राम रैदास पुकारै । ३ ।

६८

राग धनाश्री

दरसन दीजै राम दरसन दीजै ।
दरसन दीजै बिलंब न कीजै । टेक ।
दरसन तोरा जीवन मोरा ।
बिन दरसन क्यों जिके चकोरा । १ ।
माधो सतगुरु सब जग चेला ।
अब के बिछुरे मिलन दुहेला । २ ।
धन जोबन की भूठी आसा ।
सत सत भाषै जन रैदासा । ३ ।

६९

राग धनाश्री

जन को तारि तारि बाप रमइया ।
कठिन फंद परयो पंच जमइया । टेक ।

तुम बिन सकल देव मुनि दूढ़ू ।
 कहूँ न पाऊँ जमपास छुड़इया ।१।
 हम से दीन दयाल न तुमसे ।
 चरन सरन रैदास चमइया ।२।

शब्दार्थ—बाप रमइया = पिता राम । जम-पास = मृत्यु का बन्धन, आवागमन ।

विशेष—कबीर ने भी परमात्मा को बाप कहा है :—

बाप राम राया अबहूँ सरन तिहारी ।
 क० ग्र० पृ० ५६

१००

प्रीति सुधारन आव ।

तेज सरूपी सकल सिरौमनि, अकल निरंजनराव । टंक ।
 पिउ साँग प्रेम कबहुँ नहि पायो, करनी कवन विसारी ।
 चक कौ ध्यान दधिसुत सों हेत है, यों तुमसे मैं न्यारी ।१।
 भवसागर मोहि इकटक जोवत तलफत रजनी जाई ।
 पिय बिन सेजइ क्यों सुख सोऊँ, बिरह विथा तन खाई ।२।
 मे ट दुहाग सुहागिन कीजै, अपने अंग लगाई ।
 कह रैदास स्वामी क्यों विछोहे, एक पलक जुग जाई ।३।

शब्दार्थ—तेज-सरूपी = तेज ही जिसका स्वरूप है । चक = वक़ोर ।
 दधिसुत = चन्द्रमा ।

ऐसे ही कबीर का एक पद है ।

तलफै बिन बालम मोर जिया ।

दिन नहि चैन रात नहि निदिया, तलफ तलम कै भीर किया ।
 तन-मन मोर रहैट-अस डोलै, न सेज पर जनम छिया ।
 नैन थकित भये पंथ न सूझै, साईं बेदरदी सुध न लिया ।
 कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरो पीर दुख जोर किया ।

क० ग्र० पृ० १४१

विशेष—रविदास परमात्मा को प्रिय तथा स्वामी ही कहते हैं । कबीर तो बालम भी कह देते हैं और अपने को बहुरिया भी कहते हैं । इससे ज्ञात होता है कि कबीर की भक्ति कान्तावत् थी । रविदास कान्ता को रूपक की भाँति प्रयोग में लाते थे । अपने मिलन की आकुलता को व्यक्त करने के लिए ही उन्होंने वियोगिनी का दृष्टान्त अपनाया था । विरहिनी की भाँति रविदास यह कभी नहीं कहते हैं कि 'साईं बेदरदी सुव न लिया' । वे सिर्फ इतना ही कहते हैं कि हे स्वामी, क्यों मुझे अलग कर दिया ? अकल निरंजन परात्पर अहम् का ही इस पद में वर्णन है । कान्त-पति का वर्णन अलंकार-मात्र है ।

१०१

जब राम नाम कहि गावैगा ।

तब भेद अभेद समावैगा । १ ।

जे सुख है इहि रस के पर से ।

सो सुख का कहि गावैगा । २ ।

गुरुपरसाध भई अनुभो मति ।

विष अमृत सम धावैगा । ३ ।

कह रैदास मेटि आपा पर ।

तब वा ठोहि पावैगा । ४ ।

शब्दार्थ—भेद अभेद समावैगा = सारा मायाकृत द्वैतभाव तब अद्वैतभाव में लय हो जायगा । इहि रस = अद्वैतभाव का आनन्द । धावैगा = समभेगा । आपा पर = यह अपना है, वह पराया है—यह भाव द्वैतभाव ।

विशेष—इस पद से स्पष्ट हो जाता है कि रविदास पूरे अद्वैती थे ।

१०२

या रामा एक तूँ दाना, तेरी आदि भेख ना ।
 तूँ सुलताने सुलताना, बंदा सकिसता अजाना । टेक ।
 मैं बेदियानत न नजर दे, दरमंद बरखुरदार ।
 बेअदब बदबख्त बौरा, बे अकल बदकार । ।
 मैं गुनहगार गरीब गाफिल, कमदिला दिलतार ।
 तूँ कादिर दरियावजिहावन, मैं हिरसिया हुसियार । २।
 यह तन हस्त खस्त खराब, खातिर अंदेसा बिसियार ।
 रैदास दासहि बोलि साहिब, देहु अब दीदार । ३।

शब्दार्थ—दाना = बुद्धिमान । आदि = जन्म । भेख = रूप । सुलताने
 सुलताना = सम्राट, सर्वशक्तिशाली, परमात्मा । बंदा = सेवक । सकिसता =
 शिकस्ता, निर्बल । अजाना = अज्ञानी । बेदियानत = बेईमान । न नजर दे =
 ध्यान न दो । दरमंद = दरमंदा, आज़िज़, हैरान । बरखुरदार = बालक,
 अयानी । बेअदब = जो बड़ों का आदर-सम्मान न करे । बदबख्त =
 कमबख्त, अभागा, दुर्भाग । बौरा = पागल, उन्मत्त । बे अकल = बुद्धिहीन ।
 बदकार = कुकर्मि, व्यभिचारी । गुनहगार = अपराधी । गाफिल = असावधान ।
 कमदिला = बुरे दिल का । दिलतार = काले हृदय का । कादिर = समर्थ ।
 दरियावजिहावन = भवसागर पार कराने वाला । हिरसिया = लोभी ।
 हुसियार = होशियार, बड़ा । खस्त = बहुत थोड़े दाब से टूट जाने वाला ।
 हस्त = है । खातिर = के लिए । अंदेसा = फिक्र, चिंता । बिसियार = बहुत ।
 बोलि = बुलाकर । दीदार = दर्शन ।

विशेष—इस पद में अरबी और फारसी का प्रभाव स्पष्ट है । हस्त फारसी
 की क्रिया है । फारसी की संज्ञा और विशेषण के अतिरिक्त क्रिया का भी
 प्रयोग रविदास ने किया है । खातिर = सम्प्रदान का क का चिह्न (Prepo-
 sition) है और अरबी का शब्द है ।

१०३

बंदे जानि साहिब गनी ।
 समझि बेद कतेब बोलै काबे में क्या मनी । टेक ।
 स्याही सपेदी तुरंगी नाना रंग बिसाल बे ।
 नापैद तैं पैदा किया पैमाल करत न बार बे । १।
 ज्वानी जुमी जमाल सूरत देखिये थिर नाहि बे ।
 दम छै सै सहस इकइस हर दिन खजाने थैं जाहि बे । २।
 मनी मारे गर्ब गाफिल बेमेहर बेपीर बे ।
 दरी खाना पड़ै चोबा, होइ नहीं तकसीर बे । ।
 कुछ गाँठि खरची मिहर तोसा, खैर खुबीहा थीर बे ।
 तजि बदवा बेनजर कमदिल, करि खसम कान बे ।
 रैदास की अरदास सुनि, कछु हक हलाल पिछान बे । ४।

शब्दार्थ—गनी = धनी । कतेब = किताब, कुरान । काबे = काबा, मुसलमानों का एक तीर्थ । मनी = मैं, अहम् । स्याही = काला । सपेदी = श्वेत । तुरंगी = तुरंगी, नील का रंग, भूरा । नापैद = जो पैदा न हुआ हो । पैमाल = पामाल, पैर से मला हुआ, पद-दलित बरबाद । बार = बेर, देर । ज्वानी जुमी = यौवन का जोश । दम छै सै सहस इकइस = २१६०० श्वासों जिन्हें हर मनुष्य दिन-रात में लेता है । खजाने = निधि, जीव । बेमेहर = निर्दय । बेपीर = बेरहम, दूसरों के कष्ट को न जानने वाला । बे = हे, छोटों के लिए संबोधक शब्द । दरी खाना = वह बहुत से द्वार हों, बारहदरी, यहाँ शरीर से अभिप्राय है जिसमें इन्द्रियों के १० द्वार हैं । चोबा = छड़ी । तकसीर = सूर, आराध । गाँठि = पास से, पल्ले से । तोसा = पाथेय, तोशा, वह खाद्य पदार्थ जो यात्री मार्ग के लिए अपने साथ रख लेता है । खैर-खुबीहा = क्षेम-कुशल । बदवा = नीच, खल, बद । खसम = पति, स्वामी । अरदास = अर्जदास्त, निवेदन । हक = सत्य । हलाल = न्याय । पिछान = पहचान ।

१०४

खालिक सिकस्ता मैं तेरा ।

दे दीदार उमेदगार, बेकरार जिव मेरा । टेक ।

औवल आखिर इलाह, आदम फरिस्ता बंदा ।

जिसकी पनह पीर पैगंबर, मैं गरीब क्या गंदा । १।

तू हाजरा हज़ूर जोग इक, अवर नहीं है दूजा ।

जिसके इसक आसरा नाहीं, क्या निवाज क्या पूजा । २।

नालीदोज़ हनोज़ बेबख़त, कर्म खिजमतगार तुम्हारा ।

दरमाँदा दर ज़वाब न पावै, कह रैदास बिचारा । ३।

शब्दार्थ—खालिक = अखिलेश । उमेदगार = आशा देने वाला । बेकरार = विकल । औवल = आदि । आखिर = अन्त । इलाह = परमात्मा । आदम = मनुष्य । फरिस्ता = देव । बंदा = सेवक । पनह = शरण । पीर = सिद्ध, महात्मा । पैगम्बर = मनुष्यों के पास ईश्वर का संदेश लेकर आने वाला, अवतारी । गंदा = मैला । हाजरा हज़ूर = सभी सत्ताग्रों का स्वामी । इसक = इश्क, प्रेम । निवाज = नमाज़, मुसलमानों का पूजा करने का ढंग । नाली-दोज़ = जूता सीमे वाला, चमार । हनोज़ = अब तक । बेबख़त = अभाग । कर्म = कमीना । खिजमतगार = टहलुवा, सेवक । दरमाँदा = दर्दमन्द, पीड़ित । दर = द्वार, दरवाजा । ज़वाब = समस्याओं का हल । रविदास परेशान हैं । वे अपनी परेशानी का द्वार या निकलने का मार्ग और हल नहीं पाते हैं ।

१०५

ह्यों तुम कारन केसवे, लातच जिव लागी ।

निकट नाथ प्राप्त नहीं, मन मोर अभाग । टेक ।

सागर सलिल सरोदिका, जल थल अधिकाई ।

झाँति बूंद की आस है पिउ प्यास न जाई । १।

जौं रे सनेही चाहिए, चित्त बहु दूरी ।
 पंगुल फल न पहुँच ही, कछु साध न पूरी ।२।
 कह रैदास अकथ कथा, उपनिषद सुनीजै ।
 जस तूं तस तूं तस तुहीं, कस उपमा दीजै ।३।

शब्दार्थ—सलिल = जल । सरोदिका = तानाब का पानी ।

विशेष—इस पद में अनिर्वचनीयता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है ।

१०६

धम्य हरिभक्ति त्रैलोक्यश पावनी ।
 करौ सतसङ्ग इहि विमल यश गावनी । टेक ।
 बेद तें पुराण पुराण तें भागवत, भागवत तें भक्ति प्रकट कीन्ही ।
 भक्ति ते प्रेम प्रेम ते लक्षणा, बिन सतसङ्ग नहि जाति चीन्ही ।१।
 गंगा पाप हरै शशि ताप अरु कल्पतरु दीनता दूरि खोवैं ।
 पाप अरु ताप सब तुच्छ मति दूरि करि, अमी की दृष्टि जब संत जोवैं ।२।
 विष्णु भक्त जिते चित्त परधर तिते, मन बच करम करि विश्वासा ।
 सन्त धरणी धरी कीर्ति जग विस्तरी प्रणत जन चरण रैदास दासा ।३।

शब्दार्थ—लक्षणा = ज्ञान जो लक्षणा द्वारा होता है, विशेषतः जहद-
 जहल्लक्षणा द्वारा जिसका सर्वविदित उदाहरण 'तत्त्वमसि' है । अमी =
 अमृत ।

विशेष—इस पद को प्रियादास ने अपनी टीका में उद्धृत किया है ।

१०७

सब सुख पावें जासु तें, सो हरि जू को दास ।
 कोउ दुख पावे जासु तें, सो न दास हरिदास ॥

१०८—१११

हरि सा हीरा छाड़ि के, करे आन की आस ।
 ते नर जमपुर जाहिगे, सत भाषै रैदास ॥१०८॥
 अंतरगति राचै नहीं, बाहर बर्थे उदास ।
 ते नर जमपुर जाहिगे, सत भाषै रैदास ॥१०९॥
 रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद ।
 अह-निसि हरि जी सुभिरिये, छाड़ि सकल प्रतिवाद ॥११०॥
 रैदास कहै जाके हृदै, रहै रैन दिन राम ।
 सो भगता भगवत सम, क्रोध न व्यापै काम ॥१११॥

पाठभेद—१-दोजक ।

११२—११३

जा देखै धिन ऊजै, नरक कुंड में बास ।
 प्रेम भगति सों ऊधरे, प्रगटत जन रैदास ॥११२॥
 रैदास तू कावैच फली, तुझे न छीपै कोइ ।
 तैं निज नावै न जानिया भला कहाँ ते होइ ॥११३॥

शब्दार्थ—कावैच = केवाच, कवि-लता, जिसके छू जाने से शरीर में खज हो जाती है और दबोरे पड़ जाते हैं ।

संकेत-सूची

क० प्र०	=	कबीर ग्रन्थावली, काशी
		नागरी प्रचारिणी सभा प्रकाशन
कठ०	...	कठोपनिषद्
केन०	...	केनोपनिषद्
गी०	...	भगवद्गीता
दे०	...	देखिए
पृ०	...	पृष्ठ
बृ०	...	बृहदारण्यकोपनिषद्
बृ० उ०	...	बृहदारण्यकोपनिषद्
मा०	...	मार्कण्डेय्योपनिषद्

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धपाठ	शुद्धपाठ
१	१७	नीखात्मबोधनम्	नीखमात्मबोधनम्
१	१६	ब्रह्म रैदासेण वै	रैदासेण सत्परम्
१	२१	तिपवित्रं तत्त्वज्ञानं	तत्त्वज्ञानं पवित्रं यत्

